अध्याय—11

अथ कृदन्तप्रकरणम्

सामान्य परिचय

कृत् प्रत्यय भी तिङ् प्रत्ययों के समान धातु के साथ जोड़े जाते हैं। तिङ् और कृत् प्रत्ययों में अन्तर यह है कि तिङ् प्रत्ययों से क्रिया रूप बनते हैं जबकि कृत् प्रत्ययों से संज्ञा, विशेषण और क्रिया विशेषण रूप बनते हैं। जैसे पच् धातु से तिङ् प्रत्यय तिप् जोड़ने से पचति रूप बनता है जिसका अर्थ है पकाता है। यह क्रिया रूप है। जबकि पच् धातु से कृत् घा् प्रत्यय जोड़ने से पाकः रूप बनता है जिसका अर्थ है पका हुआ अन्न। यह संज्ञा है। जो कार्य साध्य अवस्था में हो उसे क्रिया कहते हैं। साध्य अवस्था में कार्य की प्रक्रिया चलते रहने का भाव है। जब कार्य पूर्ण हो जाए उसे कार्य की सिद्ध अवस्था कहते हैं। पचति (पकाता है) में साध्यावस्था है और पाकः में सिद्ध अवस्था।

धातु के साथ कृत् प्रत्यय जोड़ने से जो रूप बनते हैं उन्हें कृदन्त कहते हैं। कृदन्त रूपों की 'कृत्तद्धितसमासाश्च' सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा होती है। प्रातिपदिक होने पर ङयाप् प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः तथा परश्च सूत्र सु आदि प्रत्ययों की प्राप्ति होती है। और सुबन्त प्रकरण में बताई गई प्रक्रिया के अनुसार सभी विभक्तियों में रूप चलते हैं। इसलिए कृदन्त शब्द सुबन्त की श्रेणी में आते हैं क्योंकि सुप् प्रत्यय लगने पर ही उनकी पदसंज्ञा होती है। नीचे लघुकौमुदी में दिए गए सभी कृत प्रत्ययों का संबंधित सूत्रों सहित विवेचन किया जाएगा।

घातोः 3.1.91

आततीयाध्यायसमाप्त्यन्तं ये प्रत्ययाः, घातोः परे स्युः। 'कृदतिङ इति 'कृत्' संज्ञा।

व्याख्याः इस सूत्र से लेकर अष्टाध्यायी के ततीय अध्यायकी समाप्ति तक जो प्रत्यय कहे गये हैं वे धातु से परे हों।

कृदिति—'कृद् अतिङ्' इस सूत्र से तिङ्भिन्न होने के कारण इन प्रत्ययों की कृत् संज्ञा होती है।

वासरूपोस्त्रियाम् 3.1.94

अस्मिन्धात्वधिकारेसरूपोपवपादप्रत्यय उत्सर्गस्य बाधको वास्यात् स्त्र्यधिकारोक्तं विना।

व्याख्याः धातु के इस अधिकार में वे प्रत्यय जिनका स्वरूप समान न हो उत्सर्ग अर्थात् सामान्य सूत्र का बाधक विकल्प से हो 'स्त्रियां क्तिन् ३.३.९४' इस सूत्र के 'स्त्रियाम्' अधिकार में बताए गए प्रत्ययों को छोड़कर। इसलिए अचोयत् ऋहलोर्ण्यत्, इत्यादि अपवादों के विषय में सामान्य तव्यत् आदि प्रत्यय भी होते हैं—कार्यम्, कर्तव्यम्, करणीयम्, वाच्यम्, वक्तव्यम्, वचनीयम् इत्यादि।

तव्यत् आदि सामान्य प्रत्ययों का ण्यत् आदि अपवाद असरूप है अर्थात् भिन्न रूप है, इसलिये यह सूत्र प्रवत्त होता है।

जहाँ अपवाद प्रत्यय सामान्य प्रत्यय के समान रूपवाला हो, वहां यह सूत्र नहीं लगेगा अर्थात् वहां नित्य बाध होगा। जैसे—अण् और क दोनों का अ शेष रहता है, इसलिये ये सरूप प्रत्यय हैं। अतः अपवाद क के द्वारा सामान्य अण् का नित्य बाध होगा। 'आतोनुपसर्गे' से क होकर 'गोदः' बनेगा। यहां 'कर्मण्यण्' का अण् प्रत्यय फिर नही होगा, यदि किया गया तो वह अशुद्ध समझा जाएगा।

'स्त्रियाम्' अधिकार में यह परिभाषा नहीं लगती। इसलिये स्त्रियां क्तिन्' ३.३.९४।। इस उत्सर्ग का अ प्रत्ययात्

३.३.१०२।।' यह अपवाद नित्यबोधक होता है। चिकिर्षा, जिहीर्षा—यहां अब क्तिन् नहीं होता।

कृत्याः 3.1.95

'७८७ ण्वुलतचौ ३.१.१३३।। इत्यतः प्राक् कृत्यसंज्ञा स्युः

व्याख्याः 'ण्वुल्तचौ' से पहले के प्रत्ययों की कृत्य संज्ञा होती है।

कर्तरि कृत् 3.4.67

'कृत्' प्रत्ययः कर्तरि स्यात्। इति प्राप्ते—

व्याख्याः कृत् प्रत्यय कर्ता अर्थ में हों।

इससे सभी प्रत्यय कर्ता में प्राप्त हुए।

तयोरेव कृत्य-क्त-खलार्थः 3.4.70

एते भावकर्मणोरेव स्युः।

व्याख्याः कृत्य, क्त और खलर्थ प्रत्यय भाव और कर्म में ही हों अर्थात् कर्ता में नहीं हों।

खलर्थ प्रत्यय आगे आयेंगे। खल् प्रत्यय क्रिया को कठिनता से या सरलता से किये जाने अर्थ को प्रकट करता है। इस अर्थ के अन्य सभी प्रत्ययों का ग्रहण करने के लिये यहां खलर्थ प्रत्यय कहा है।

अतएव कृत्य, क्त और खलर्थ प्रत्ययों के योग में भाववाच्य और कर्मवाच्य के समान अनुक्त होने से कर्ता में ततीया विभक्ति आती है। जैसे—(**कृत्य-मया पठितव्यम्**—मुझे पढ़ना चाहिए। **क्त-मया पठितम्**—मैंने पढ़ा। **खलर्थ-मया सुकरम् इदं कार्यम्**—यह कार्य मैं सरलता से कर सकता हूं।)

तव्यत्-तव्यानीयरः 3.1.96

धातोरेते प्रत्ययाः स्युः। एधितव्यम् एधनीयं त्वया। भावे-औत्सर्गिकम् एकवचनं क्लीबत्वं। चेतव्यः, चयनीयो वा धर्मस्त्व्या।

व्याख्याः तव्यत्, तव्य और अनीयर् प्रत्यय धातु से हों।

तव्य का तकार इत्संज्ञक है। तित् होने से यहां 'त्स्विरितम्' सूत्र से स्वरित होता है। तव्य से इसका यही भेद है। वैसे रूप दोनों में समान बनते हैं। इन प्रत्ययों का प्रयोग चाहिए अर्थ में होता है मुझे पढ़ना चाहिए—मया पठितव्यम्।

अनीयर् का रेफ भी इत्संज्ञक है।

एधितव्यम्, एधनीयम्—एध् धातु से भाव में तव्य और अनीयर् प्रत्यय हुये हैं। धातु से विहित होने से ये 'आध धातुकं शेषः' से आर्धधातुक हैं वलादि आर्धधातुक होने से तव्य को इट् आगम हुआ।

भाव में ये इसलिये हुए कि एध् धातु अकर्मक है। अकर्मक से भाव में वे प्रत्यय होंगे। कर्ता अनुक्त है—इस बात को दिखाने के लिये 'त्वया' यह ततीयान्त कर्ता दिया है।

भाव इति—भाव में सामान्य एकवचन और नपुंसकलिङ्ग हुआ।

कर्म में ये प्रत्यय सकर्मक धातुओं से आते हैं और कर्म के विशेषण के रूप में प्रयुक्त होते हैं। अतः लिङ्ग वचन कर्म के अनुसार होते हैं।

चेतव्यः, चयनीयो या धर्मस्त्वया—चि धातु सकर्मक है। इसलिये यहां कर्म में तव्य और अनीयर् प्रत्यय हुए। चयन का कर्म धर्म है, वह पुंल्लिङ्ग और एकवचन में है, इसलिये इनसे भी पुंल्लिङ्ग और एकवचन हुआ। 'त्वया' यह कर्तपद है, इसमें अनुक्त होने से कर्ता में ततीया विभक्ति हुई है।

(वा) केलिमर उपसंख्यानम्। पचेलिमा माषाः, पक्तव्या इत्यर्थः। भिदेलिमाः सरलाः, भेत्तव्या इत्यर्थः। कर्मणि

प्रत्ययः।

व्याख्याः केलिमर् प्रत्यय का भी यहां उपसंख्यान करना चाहिये अर्थात् तव्यत् आदि के समान केलिमर प्रत्यय भी भाव और कर्म में होता है।

पचेलिमा माषाः—यहां पच् धातु से प्रकृत वार्तिक के द्वारा केलिमर् प्रत्यय होकर 'पचेलिमाः' सिद्ध हुआ।

पक्तव्या इति—तव्यत् के अर्थ में ही यह हआ है। इसीलिये 'पक्तव्याः' वह अर्थ किया गया है। कर्म के उक्त होने से 'माषाः' यहां प्रथमा हुई और इसी के अनुसार 'पचेलिमा'' में पुंलिङ्ग और बहुवचन आये।

भिदेलिमाः सरला[१]**ः**— (भेत्तव्या इत्यर्थः, सरल वक्ष काटने योग्य है)—यहां भिद् धातु से केलिमर! प्रत्यय हुआ है। कर्म से प्रथमा हुई और तदनुसार 'भिदेलिमाः' से पुंल्लिङ्ग और बहुवचन हुए।,

कर्मणीति—'पचेलिमाः' और 'भिदेलिमाः' में केलिमर् प्रत्यय कर्म में हुआ, क्योंकि ये धातु सकर्मक हैं।

कुछ आचार्य यहां कर्मकर्ता अर्थ में केलिमर् प्रत्यय हुआ बताते हैं।

कृत्य-ल्युटो बहुलम् 3.3.113

क्वचित्प्रवत्तिः क्वचिदप्रवत्तिः क्वचिद्विभाषा क्वचिदन्यदेव। विधेर्विधानं बहुधा समीक्ष्य चतुर्विधं बाहुलकं वदन्ति।।१।। 'स्नान्ति-अनेन' इति स्नानीयं चूर्णम्। दीयतेस्मै दानीयो विप्रः।

व्याख्याः कृत और ल्युट् प्रत्यय बहुलता से प्रयुक्त होते हैं जो नियम नित्य न हों परन्तु उनकी प्रवत्ति यथेष्ट या स्वेच्छा से हो उस बहुल कहते हैं। बहुल चार प्रकार का बताया गया है—

क्वचिदिति—कहीं (प्रयोग विशेष में) प्रवत्ति होना, कहीं (प्रयोग विशेष में) प्रवत्ति न होना, कहीं विकल्प से प्रवत्ति होना और कहीं अन्य ही प्रकार होना—(इस प्रकार) विधिका विधान अनेक प्रकार का विचारकर बाहुलक को चार प्रकार का कहते हैं।

स्नानीयम्-स्नान्त्यनेनेति स्नानीयं चूर्णम्—जिस चूर्ण से स्नान किया जाय उसे स्नानीय कहते हैं, यहां 'कृत्यल्युटो बहुलम्' सूत्र से स्ना धातु से कारण अर्थ में बाहुलक अनीयर् कृत्य प्रत्यय हुआ। यहां बाहुलक का पहला प्रकार है अर्थात् अप्राप्त की प्रवत्ति हो जाना। कारण में अनीयर् प्राप्त नहीं बाहुलक से हो गया।

दानीयः—दीयतेस्मै दानीयो विप्रः—इसे दिया जाता है इस प्रकार दानीय हुआ, वह ब्राह्मण होता है। यहां बाहुलक से संप्रदान अर्थ में दा धातु से अनीयर् प्रत्यय हुआ। यह भी बाहुलक के पहले प्रकार का उदाहरण है।

अचो यत् 3.1.97

अजन्ताद् धातोर्यत् स्यात्। चेयम्।

व्याख्याः अजन्त धातु से यत् प्रत्यय हो।

चेयम्—चि् (चयन, चुनना) धातु से अजन्त होने के कारण यत् प्रत्यय हुआ। तब यत् के आर्धधातुक होने से उसके परे रहते 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' से गुण होने पर 'चेय' शब्द बना। उससे सामान्य तें नपुंसकलिङ्ग होने से स्वादि की उत्पत्ति हुई। प्रथमा के एकवचन में यह रूप बना।

ईद् यति 6.4.65

यति परे आत ईत् स्यात्। देयम्। ग्लेयम्।

व्याख्याः 'यत्' परे रहते आकार के स्थान में ईकार हो।

---

१. सरल देवदारु और उसकी जाति के चीड़ आदि वक्षों को कहते हैं। कविकुलगुरु कालिदास ने 'कुमार संभव' के प्रथम सर्ग में—'कपोल—कण्डूः करिमिर्विनेतुं विघट्टितानां सरलद्रुमाणाम्' इस प्रकार सरल वक्षों का वर्णन किया है। (ये वक्ष सीधे होते हैं, इसलिये इनका 'सरल' नाम पढ़ा है।)

देयम्—'दान करने योग्य या दान करना चाहिये' इस अर्थ में कर्म में दा धातु से यत् प्रत्यय हुआ। आर्धधातुक यत् परे रहते प्रकृत सूत्र से धातु के आकार को ईकार होने पर उसे गुण हुआ। तब 'देय' से प्रथमा के एकवचन में रूप बना।

ग्लेयम् (ग्लानि करनी चाहिये)—यहां ग्लै धातु से भाव में यत् प्रत्यय हुआ। उसके परे रहते **'आदेच उपेशेशिति'** से ऐकार को आकार हुआ। तब प्रकृत सूत्र 'ईद् यति' से आकार को ईकार हुआ और उसे गुण एकार होकर रूप बना।

पोरदुपधात् 3.1.98

पवर्गान्ताद् अदुपधाद् यत् स्यात्। ण्यतोपवादः। शप्यम्। लभ्यम्।

व्याख्याः जो धातु पवर्गान्त हो और उपधा में अत् हो उससे यत् हो।

ण्यत् इति—यह यत – ऋहलोर्ण्यत् ३.१.२४।।' से प्राप्त ण्यत् का बाधक है।

शप्यम्—(शपथ के योग्य; शाप देना चाहिये)—शप् धातु पवर्गान्त है, क्योंकि इसके अन्त में पकार है, इसकी उपधा में ह्रस्व अकार भी है। अतः इससे यद्यपि हलन्त होने के कारण 'ऋहलोर्ण्यत्' से ण्यत् प्राप्त हुआ। उसको बाधकर प्रकृत सूत्र से यत् ण्त्यय हुआ।

लभ्यम् (पाना चाहिये, पाने के योग्य) लभ् धातु से हलन्त होने के कारण ण्यत् प्राप्त है। उसे बाधकर पवर्गान्त अदुपध होने से यत् हुआ।

एति-स्तु-शास् व-द जुषः क्यप् 3.1.1०9

एभ्यः क्यप् स्यात्।

व्याख्याः इण, स्तु, शास्, व, द और जुष् धातु से क्यप् प्रत्यय हो।

यह क्यप् प्रत्यय यत् और ण्यत् का बाधक है। शास् और जुष् को हलन्त होने के कारण 'ऋहलोर्ण्यत्' से ण्यत् प्राप्त था और शेष को अजन्त होने से – अचोयत् ३.१.१२५' सूत्र से यत्।

'क्यप्' के ककार और पकार की इत्संज्ञा होती है शेष केवल 'य' रहता है। यत् से इसका अन्तर कित् और पित् होने का है। कित् होने से क्यप् में गुण नहीं होता और पित् होने से 'ह्रस्वस्य'– सूत्र से तुक् आगम होता है।

ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् 6.1.71

इत्यः। स्तुत्यः। शासु-अनुशिष्टौ।

व्याख्याः ह्रस्व को तुक् आगम हो पित् कृत् परे रहते।

इत्यः—इण् धातु से पिछले सूत्र 'एति–स्त्–शास्–व–द–जुषः क्वप् ३.१.१०६' से क्यप् प्रत्यय हुआ। क्यप् का य शेष रहता है। पित् होने से उसके परे रहते ह्रस्व इकार को तुक् आगम होकर 'इत्य' रूप बना उससे प्रथमा के एकवचन में रूप सिद्ध हुआ।

शासु—'शास्' धातु मूल में नहीं बताई गई, इसलिये यहां उसका परिचय देने के लिये ऐसा कहा गया है। यह धातु अदादिगण की है।

शास इद् अङ्–हलोः 6.4.34

शास उपधाया 'इत्' स्यादङि हलादौ क्ङिति। शिष्यः। वत्यः। आदत्यः। जुष्यः।

व्याख्याः शास् की उपधा को ह्रस्व इकार हो अङ् और हलादि कित् ङित् प्रत्यय परे रहते।

शिष्यः—शास् धातु से पूर्वोक्त 'एति–स्तु–शास–' इत्यादि सूत्र से क्यप् प्रत्यय हुआ, वह कित् है, उसके परे रहते प्रकृत सूत्र से उपधा आकार को इकार होने पर 'शासिवसिधसीनां च' से सकार को मूर्धन्य सकार होकर 'शिष्यः'

यह रूप सिद्ध हुआ। इस रूप में कित् होने का फल आकार को इक होना है।

वृत्यः— व धातु से 'एतिस्तु–शास्–व–' से क्यप् और 'ह्रस्वस्य पिति कृति तक्' से तुक् आगम होकर रूप बना। यहाँ 'क्यप्' होने का फल 'तुक्' आगम है।

आदृत्यः— आङ्पूर्वक द धातु से क्यप् और तुक् होने पर पूर्ववत् रूप सिद्ध हुआ।

यहां भी 'क्यप्' होने का फल 'तुक्' आगम है।

जुष्यः—जुष् धातु से क्यप् हुआ। क्यप् के कित् होने से उसके परे रहते लघुपध गुण का निषेध हो गया।

मजेर्विभाषा 3.1.113

मजेः क्यब् वा। मज्यः।

व्याख्याः मज् धातु से क्यप् विकल्प से हो।

मज् (साफ करना) धातु हलन्त है, अतः उसे 'ऋहलोर्ण्यत् ३.१. सूत्र से ण्यत् प्राप्त था, उसका यह सूत्र बाधक है।

मज्यः (साफ करने योग्य, साफ करना चाहिये)—मज् धातु से प्रकृत सूत्र से क्यप् हुआ। कित् होने से गुण का निषेध हो गया।

ऋहलोर्ण्यत् 3.1.124

ऋवर्णान्ताद् हलन्ताच धातोर्ण्यत्। कार्यम्। हार्यम्। धार्यम्।

व्याख्याः ऋवर्णान्त और हलन्त धातु से ण्यत् प्रत्यय हो। ण्यत् का य शेष रहता है, णकार और तकार इत्संज्ञक हैं।

कार्यम्, हार्यम्, धार्यम्—कृ हृ और ध धातुओं से ऋकारान्त होने के कारण ण्यत् प्रत्यय प्रकृत सूत्र से हुआ। ण्यत् के णित् होने से उसके परे रहते 'अचो ञ्णिति' से ऋकार को वद्धि होने पर ये रूप बने।

च-जोः कु घिण्-ण्यतोः 7.3.52

चजो' कुत्वं स्यात् घिति ण्यति च परे।

व्याख्याः चकार और जकार को कुत्व होता है घित् और ण्यत् प्रत्यय परे रहते।

सूत्रस्थ 'घिण्' 'घित्' के तकार को 'यरोनुनासिकेनुनासिको वा' सूत्र से अनुनासिक णकार होने से बना है।

'मजेविंभाषा' सूत्र से जब क्यप् नहीं हुआ। उस पक्ष में हलन्त होने से ण्यत् प्रत्यय होता है। ण्यत् परे रहते यह सूत्र जकार को कवर्ग गकार करता है।

मजूर्वद्धि 7.2.114

मजेरिको वद्धिः सार्वधतुकार्धधातुकयोः। मार्ग्यः।

व्याख्याः मज् धातु के इक् को वद्धि हो सार्वधातुक आर्धधातुक प्रत्यय परे रहते।

मार्ग्यः—क्यप् के अभावपक्ष में ण्यत् हुआ पिछले सूत्र से जकार को कवर्ग गकार हुआ। तब प्रकृत सूत्र से ऋकार को वद्धि आर होकर रूप बना।

भोज्यं भक्ष्ये 7.3.69

भोग्यमन्यत्। इति कृत्यप्रक्रिया।

व्याख्याः भक्ष्य–भक्षण करने योग्य–अर्थ में भोज्य बनता है अर्थात् ण्यत् परे रहते 'चजोः कु घिण्यतोः' से प्राप्त कुत्व नहीं होता।

यह सूत्र कुत्व के अभाव का निपातन करता है।

जब भक्षण करने योग्य अर्थ नहीं होगा तब कुत्व होकर भोग्यम् रूप बनेगा इसका अर्थ होगा 'उपभोग के योग्य'।

हलन्त होने से 'भुज्' धातु से ण्यत् प्रत्यय होता है।

कृत्य प्रक्रिया समाप्त।

ण्वुल-तचौ 3.1.133

धातोरेतौ स्तः। 'कर्तरि कृत्' इति कर्त्रर्थे।

व्याख्याः धातु से ण्वुल् और तच् प्रत्यय हों।

ण्वुल् का वु और तच् का त शेष रहता है, शेष भाग दोनों के इत्संज्ञक है।

कर्तरि कृदिति—ये प्रत्यय 'कर्तरि कृत्' सूत्र से कर्ता अर्थ में होते हैं।

यु-वोरनाकौ 7.1.1

'यु वु' एतयोः'अनाकौ स्तः। कारकः। कर्ता।

व्याख्याः यु और वु को क्रम से 'अन' और 'अक' आदेश हो।

कारकः (करने वाला)—कृ धातु से कर्ता अर्थ में —ण्वुल—तचौ ३.१.१३३' सूत्र से ण्वुल् होने पर प्रकृत सूत्र 'यु—वोः अनाकौ ७.१.१' से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश हुआ और णित् होने के कारण ण्वुल् परे रहते 'अचो णिति से वद्धि होकर 'कारक' शब्द बना। प्रथमा के एकवचन में उक्त रूप सिद्ध हुआ।

कर्ता (करनेवाला)—कृ धातु से कर्ता अर्थ में पूर्ववत् तच् प्रत्यय हुआ, तच् की आर्धधातुक संज्ञा हुई। उसके परे रहते 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' से गुण अर् होकर रूप सिद्ध हुआ। 'कर्त'। उससे प्रथमा के एकवचन में रूप बन गया।

नन्दि-ग्रहि-पचादिभ्यो ल्युणिन्यचः 3.1.134

नन्द्यादेर्ल्युः, ग्रह्यदेर्णिनिः, पचादेरच् स्यात्। नन्दयतीति नन्दनः, जनमर्दयतीति जनार्दनः, लवणः। ग्राही, स्थायी, मन्त्री,। पचादिराकृतिगणः।

व्याख्याः नन्द् आदि धातुओं से ल्यु, ग्रह् आदि से णिनि और पच् आदि से अच् प्रत्यय हो। ग्रह आदि में ग्रह स्था और मन् हैं।

ल्यु का यु, णिनि का इन् और अच् का अ शेष रहता है बाकी इत्संज्ञक हैं। णिनि णित् है उसके परे रहते वद्धि होती है। ल्यु के यु को 'युवोरनाकौ' से अन आदेश होता है।

ये तीनों प्रत्यय भी कर्ता अर्थ में यथापूर्व 'कर्तारि कृत्' सूत्र के अनुसार होते हैं।

नन्दनः (आनन्द देनेवाला)—टुनदि समद्धौ (भ्वा. प. से.) धातु से ल्यु प्रत्यय प्रकृत सूत्र से हुआ। तब 'यु' के स्थान में 'यु—वोः अनाकौ ७.१.१।।' सूत्र से 'अन' आदेश होने पर प्रथमा के एकवचन में उक्त रूप सिद्ध हुआ।

लूलवणः (काटनेवाला या नमक)— (क्रया.उ. से.) धातु से नन्द्यादि होने के कारण ल्यु प्रत्यय हुआ। यु को अन आदेश और नन्द्यादिगण में निपातन से णत्व होकर 'लवण' शब्द बना। कृदन्त होने से प्रातिपदिक संज्ञा होकर स्वादि की उत्पत्ति हुई। प्रथमा के एकवचन में रूप सिद्ध हुआ।

ग्राही (ग्रहण करनेवाला) ग्रह् धातु से प्रकृत सूत्र के द्वारा णिनि प्रत्यय हुआ। णिनि के णित् होने से उसके परे रहते 'अत उपधायाः ७.२.११६।।' सूत्र से उपधा अकार की वद्धि हुई। तब 'ग्रहिन्' शब्द बना (कृदन्त होने से प्रातिपदिक संज्ञा होने पर स्वाद्युत्पत्ति हुई। प्रथमा के एकवचन में हल्ङ्यादि लोप और उपधादीर्घ होकर रूप सिद्ध हुआ।)

स्थायी (स्थिर रहनेवाला)—स्था धातु से ग्रह्यादि होने के कारण णिनि प्रत्यय हुआ। णिनि के णित् होने से उसके परे रहते आकारन्त स्था धातु को 'आतो युक् चिणकृतोः ७.३.३३।।' से युक् आगम होने पर 'स्थायिन्' शब्द बना।

उससे सु आदि की उत्पत्ति होकर प्र. ए. व. में रूप सिद्ध हुआ।

मन्त्री (सलाह देनेवाला, सचिव)—मन्त्री चुरादि धातु से णिनि प्रत्यय हुआ। णि का लोप हुआ। मन्त्रिन् की प्रातिपदिक संज्ञा होने पर सु आदि की उत्पत्ति होकर प्रथमा के एकवचन में रूप बना।

चादिरिति—पच् आदि आकृतिगण है। इसलिये पचः, नदः, चोरः आदि शब्द अच् प्रत्यय से बनते हैं।

इगुपघ-ज्ञा-प्री-किरः कः 3.1.135

एभ्यः कः स्यात्। बुधः। कृशः। ज्ञः। प्रियः। किरः।

व्याख्याः इगुपध, ज्ञा, प्री और कृ धातुओं से क प्रत्यय हो।

'क' प्रत्यय का ककार इत्संज्ञक है, 'अ' शेष रहता है। कित् होने से इसके परे रहते गुण वद्धि का निषेध हो जाता है।

बुधः (जाननेवाला, पण्डित)—'बुध्' (दि. आ. अ) धातु इगुपध है। इस से प्रकृत सूत्र के द्वारा क प्रत्यय हुआ। 'बुध' की प्रातिपदिक संज्ञा होने पर सु आदि की उत्पत्ति होकर प्रथमा के एकवचन में रूप सिद्ध हुआ।

कृशः (कमजोर), **ज्ञः** (जाननेवाला), **प्रियः** (प्रसन्न करनेवाला, प्यारा), **किरः** (बिखेरनेवाला)—इनमें भी क प्रत्यय हुआ।

ज्ञः—यहां ज्ञा से क होने पर 'आतो लोप इटि च' से आकार का लोप हुआ।

प्रियः—प्री में क होने पर ईकार को इयङ् आदेश हुआ।

किरः—कृ में क होने पर ऋत इद्धातोः से इर् आदेश हुआ।

आतश्चोपसर्गे3.1.136

प्र-ज्ञः। सु-ग्लः।

व्याख्याः उपसर्ग—सहित आदन्त धातु से क प्रत्यय हो।

प्रज्ञः (प्रकृष्ट जानने वाला, विद्वान)—प्र पूर्वक ज्ञा धातु से प्रकृत सूत्र से क प्रत्यय हुआ। 'आतो लोप इटि च ६. ४.६४।।' स आकार का लोप होकर 'प्रज्ञ' शब्द बना। प्रातिपदिक संज्ञा होकर प्रथमा के एकवचन में रूप सिद्ध हुआ।

सुग्लः (अच्छी तरह ग्लानि करनेवाला)—सु पूर्वक ग्लै धातु से ऐकार को आकार होने पर प्रत्यय होकर आकार का लोप हुआ। सुग्ल की प्रातिपदिक संज्ञा हुई। प्रथमा के एकवचन में रूप सिद्ध हुआ।

गेहे कः 3.1.144

गेहे कर्तरि ग्रहेः कः स्यात्। गहम्।

व्याख्याः यदि गेह—घर—कर्ता अर्थ हो तो उस अर्थ में ग्रह् धातु से 'क' प्रत्यय हो।

ग्रहम् (घर)—ग्रह् धातु से प्रकृत सूत्र के द्वारा 'क' प्रत्यय हुआ। 'ग्रहि ज्या—६.१.१६' सूत्र से संप्रसारण होकर 'गह' शब्द बना।

यह अर्धर्चादिगण में होने से पुंल्लिङ्ग और नपुंसक दोनों है। पुंल्लिङ्ग में सदा बहुवचन में आता है। अमरकोष ने कहा है—''गहाः पुंसि च भूम्न्येव'।

कर्मण्यण् 3.2.1

कमेण्युपदे धातोः 'अण्' प्रत्ययः स्यात्। 'कुम्भं करोति' इति—कुम्भकारः।

व्याख्याः कर्म उपपद रहते धातु से अण् प्रत्यय हो।

अण् का णकार इत्संज्ञक है, केवल अकार बचता है। णित् होने से इसके परे रहते वद्धि हो जाती है।

कुम्भकारः (घड़ा बनानेवाला, मुम्हार)—कुम्भ कर्म उपपद रहते कृत धातु से 'कुम्भ अम् कृ' इस दशा में अण् प्रत्यय

हुआ। उसके परे रहते ऋकार के स्थान में 'अचो ञ्णिति ७.२.११५' सूत्र से अजन्त अङ्गनिमित्त २.१६।।' से समाप्त हुआ। समास का अवयव होने से 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः २.४.७१।।' से सुप् अम् का लोप हुआ। इस प्रकार 'कुम्भकार' यह शब्द बना। इसकी कृदन्त होने से प्रातिपदिक संज्ञा हुई। सु आदि की उत्पत्ति होने पर प्रथमा के एकवचन में रूप सिद्ध हुआ।

आतोनुपसर्गे कः 3.2.3

आदन्तात् धातोर्नुपसर्गात् कर्मण्युपपदे कः स्यात्। अणोपवादः। आतो लोपः—गो-दः, कम्बल-दः, अनुपसर्गे किम्-गो-संदायः।

व्याख्याः उपसर्ग–रहित आदन्त धातु से कर्म उपपद रहते 'क' प्रत्यय हो।

अण इति—यह क प्रत्यय 'कर्मण्यण ३.२.१।।' का बाधक है।

गो-दः (गाय देनेवाला)—'गो अम् दा' इस दशा में प्रकृत सूत्र से 'क' प्रत्यय हआ। दा धातु आकारान्त है और इसके साथ उपसर्ग नहीं है। 'आतो लोप इटि च ६.४.६४।।' से अकार का लोप हुआ। पूर्ववत् उपपद समास होने पर सुप् का लोप हुआ। तब 'गोद' की कृदन्त होने के कारण प्रातिपदिक संज्ञा हुई। सु आदि की उत्पत्ति होने पर प्रथमा के एकवचन में यह रूप बना।

धन-दः (धन देनेवाला, कुबेर) और **कम्बल-दः** (कम्बल देनेवाला)—इनकी सिद्धि 'गोदः' के समान ही होती है।

अनुपसर्गे इति—आकारान्त धातु के साथ उपसर्ग नहीं होना चाहिये ऐसा क्यों कहा? इसका प्रयोजन है—**गोसंदाय। गां संददाति**—गाय को देता है—इस अर्थ में 'गो अम् सं दा' यहां सम् उपसर्ग का योग होने से आकारान्त होने पर भी दा धातु से 'क' प्रत्यय नहीं हुआ। तब सामान्य सूत्र 'कर्मपयण् ३.२.१।।' से अण् प्रत्यय हुआ। 'आतो युक् चिणकृतोः ७.३.३३।।' से युक् आगम हुआ। उपपद समास होने पर सुप् अम् का लोप हुआ। तब 'गोसंदाय' की कृदन्त होने से प्रातिपदिक संज्ञा होकर सु आदि की उत्पत्ति होने पर प्रथमा के एकवचन में यह रूप सिद्ध हुआ।

(वा) **मूल-विभुजादिभ्यः कः। मूलानि विभुजति मूलविभुजो रथः। आकृतिगणोयम्। मही-ध्रः, कु-ध्रः**

व्याख्याः मूलविभुज आदि शब्दों में क प्रत्यय हो।

यह वार्तिक भी पूर्वोक्त 'कर्मण्यण् ३.२.१।।' इस सूत्र का बाधक है।

मूल-विभुजः (मूलानि विभुजति—जड़ों को तोड़नेवाला, रथ)—मूल शस् वि भुज्— इस दशा में क प्रत्यय हुआ। उपपद समास होने पर सुप् का लोप हुआ। तब 'मूल–विभुज' की कृदन्त होने से प्रातिपदिक संज्ञा हुई। सु आदि की उत्पत्ति होकर प्रथमा के एकवचन में रूपसिद्ध हुआ।

आकृतीति—मूल विभुज आदि आकृतिगण है। इसलिये—**मही-ध्रः** (महीं धरति—पथ्वी को धारण करनेवाला पहाड़), **कु-ध्रः** (कु[१] पथ्वी धरति—पथ्वी को धारनेवाला पहाड़) इनमें भी 'क' प्रत्यय हुआ। कित् होने से गुण का निषेध होने पर ऋकार को यण् होकर उक्त रूप बनते हैं।

चरेष्टः 3.2.16

अधिकरणे उपपदे। कुरु-चरः।

व्याख्याः अधिकरण उपपद रहते हुए चर् धातु से ट प्रत्यय हो।

ट प्रत्यय के टकार की इत्संज्ञा होती है। टित् होने का फल स्त्रीलिंङ्ग में 'टिड्ढाणा्–' ४.१.१५ से ङीप् प्रत्यय होता है।

कुरु-चरः (कुरु देश में विचरण करने वाला)—'कुरुषु चरति' इस विग्रह में 'कुरु सु चर्–' इस स्थिति में प्रकृत सूत्र से ट प्रत्यय हुआ। 'कुरुषु– यह उपपद सप्तम्यन्त है। उपपद समास होने पर सुप् सु का लोप हुआ। तब 'कुरु–चर' की कृदन्त होने से प्रातिपदिक संज्ञा हुई। प्रथमा के एकवचन में यह रूप सिद्ध हुआ।

टित् होने से स्त्रीलिङ्ग में 'टित्–ढ–१५।।' ङीप् होने पर कुरुचरी बनता है।

---

१. 'गोत्रा–कु–पथ्वी–पथिवी–' इत्यमरः।

भिक्षा-सेनादायेषु च 3.2.17

भिक्षां चरः। सेना-चरः। अदायेति ल्यबन्तम् आदाय-चरः।

व्याख्याः भिक्षा, सेना और आदाय उपपद रहते चर् धातु से ट प्रत्यय हो।

भिक्षा-चर' (भिक्षा चरति, भिक्षा लानेवाला)—भिक्षा कर्म उपपद रहते हुए ट प्रत्यय होकर रूप सिद्ध हुआ।

सेना-चरः (सेना में रहनेवाला, सैनिक)—'सेनायां चरति' इस विग्रह में 'सेना ङि चर्' इससे ट प्रत्यय हुआ। उपपद—समास होने पर सुप् ङि का लोप हुआ। इस प्रकार 'सेनाचरः' रूप सिद्ध हुआ।

आदायेति—आदाय' यह ल्यप्—प्रत्ययान्त हैं। ल्यप् प्रत्यय उत्तरकृदन्त में 'समासेनाृपूर्वे क्त्वो ल्यप् ७.३.३७' इस सूत्र में आयेगा।

आदाय-चरः (लेकर चल देनेवाला)—'आदाय' उपपद रहते चर् धातु से 'ट' प्रत्यय हुआ। उपपद—समास होने पर कृदन्त होने के कारण 'आदायचर' की प्रातिपदिक संज्ञा हुई। तब प्रथमा के एकवचन में रूप बना।

कृाे हेतु-ताच्छील्यानुलोम्येषु 3.2.20

एषु द्योत्येषु करोतेः 'टः' स्यात्।

व्याख्याः हेत, ताच्छील्य और आनुलोम्य अर्थों में धातु से 'ट' प्रत्यय हो।

ताच्छील्य 'स्वभाव' को और आनुलोम्य 'अनुकूलता' को कहते हैं।

अतः कृ-कमि-कंस-कुम्भ-पात्र-कुशा-कर्णीष्वनव्ययस्य 8.3.46

आद् उत्तरस्याव्ययस्य विसर्गस्य समोस नित्यं सादेशः 'करोति' आदिषु परेषु। यशस्करी-विद्या। श्राद्ध-करः। वचन-करः।

व्याख्याः कृ धातु, कम् धातु, कंस, कुम्भ, पात्र, कुशा और कर्ण शब्द परे हों तो अकार से परे विसर्ग, जो विसर्ग अव्यय का न हो, के स्थान में नित्य सकार आदेश हो समास में।

यह सूत्र विसर्गों के स्थान में प्राप्त जिह्वामूलीय और उपध्मानीय का बाधक है।

यशस्करी (यश का हेतु, विद्या आदि)—'यशः करोति' इस विग्रह में 'यशस् अम् कृ' से पूर्वोक्त प्रकृत सूत्र से हेतु अर्थ में ट प्रत्यय हुआ, तब उपपद समास होने पर सुप् अम् का लोप हुआ। ऋकार को अर् गुण होकर 'यशस्कर' बना। उससे टित् होने के कारण '१२५७ टिड्ढाण्—४.१.१५।।' सूत्र से ङीप प्रत्यय हुआ।

प्रकृत सूत्र से 'याः' में वर्तमान विसर्गों के स्थान में प्राप्त जिह्वामूलीय को बाधकर सकार आदेश हुआ।

श्राद्ध-करः (वचनं करोति—कहे हुए को करनेवाला, आज्ञापालक)— 'वचन अम् कृ' से ट प्रत्यय हुआ। उपपद समास होने पर सुम् अम् का लोप हुआ। ऋकार को अर् गुण हुआ।

एजेः खश् 3.2.28

ण्यन्ताद् एजेः खश् स्यात्।

व्याख्याः ण्यन्त एज् (कांपना) धातु से 'खश्' प्रत्यय हो। 'खश्' प्रत्यय के खकार और शकार इत्संज्ञक हैं, अकार ही शेष रहता है।

अरुर्द्विषद्-अजन्तस्य मुम् 6.3.67

अरुषो द्विषतोजन्तस्य च 'मुम्' आगमः स्यात् खिदन्ते परे नतु अव्ययस्य। शित्त्वात् शबादिः 'जनमेजयति' इति जनमेजयः।

व्याख्याः अरुष् (मर्म), द्विषत् (शत्रु) और अजन्त शब्दों को मुम् आगम हो खिदन्त परे रहते, परन्तु अव्यय को मुम् नहीं होता।

शित्वाद् इति—'खश्' के शित् होने से उसके परे रहते 'शप्' आदि होते हैं। शित् होने से 'तिङ्' शित्—सार्वधातुकम् ३.४.११३' सूत्र से 'खश्' की सार्वधातुक संज्ञा होती है। तब 'शप्' आदि प्रत्यय इसके परे रहते होते हैं।

जनमेजयः (जनमेजयति–लोगों को कंपाता है, परीक्षित के लड़के का नाम)–'जन अम् एजि' से 'एजेः खश्' से खश् प्रत्यय हुआ। शित होने से शप् हुआ। खश् के अकार के साथ उसका 'अतो गुणे' से पररूप हुआ। इकार को गुण और अय् आदेश हुआ। उपपद–समास होने पर सुप अम् का लोप हुआ। तब खिदन्त 'एजय' परे रहते अजन्त जन शब्द को मुम् आगम होकर रूप सिद्ध हुआ।

प्रिय-वशे वदः खच् 3.2.38

प्रियं-वदः। वशं-वदः।

व्याख्याः प्रिय और वश कर्म उपपद रहते वद् धातु से खच् प्रत्यय हो।

खच् के खकार और चकार इत्संज्ञक हैं, केवल अ बच रहता है। खित् होने से इसके परे रहते भी मुम् आगम होता है।

प्रियंवदः (प्रियं वदति, प्रिय बोलनेवाला)–'प्रिय अम् वद्' से प्रकृत सूत्र के द्वारा खच् प्रत्यय हुआ। तब उपपद समास होने पर सुप अम् का लोप हुआ। 'अरुर्दिषद् अजन्तस्य मुम्' सूत्र से खिदन्त वद् परे रहते पूर्व अजन्त प्रिय शब्द को मुम् आगम हुआ। तब कृदन्त होने से प्रातिपदिक संज्ञा होकर सु आदि की उत्पत्ति हुई। प्रथमा के एकवचन में रूप बना।

वंशवद' (वशे वदति अधीन)–इसकी सिद्धि 'प्रियंवदः' के समान होती है।

अन्येभ्योपि दश्यन्ते 3.2.75

मनिन् क्वनिप् वनिप विच्-एते प्रत्यया धातोः स्युः।

व्याख्याः मनिन्, क्वनिप्, वनिप् और विच् प्रत्यय (आकारान्त धातुओं से) अन्य धातुओं से भी हों।

'आतो–मनिन्–क्वनिप् वनिपश्च' इस सूत्र से ये प्रत्यय आकारान्त धातुओं से किये गये हैं। इस सूत्र के बाद का यह प्रकृत सूत्र है। यह आकारान्त से भिन्न धातुओं से भी इन प्रत्ययों का विधान करता है।

मनिन् का इन्, क्वनिप का क्, इप्, वनिप् का इप् और विच् सम्पूर्ण इत्संज्ञक है। मनिन् का मन्, क्वनिप् और वनिप् का वन् शेष रहता है, क्वनिप् में कित् होने से गुण वद्धि नहीं होते। विच् का कुछ भी शेष नहीं रहता। क्वनिप् और वनिप् पित् हैं, इससे इनके परे रहते पूर्व ह्रस्व वर्ण को तुक आगम भी हो जाता है।

नेड् वशि कृति 7.2.8

वशादे कृत इण् न स्यात्। शॄ हिंसायाम्-सुशर्मा। प्रातरित्वा।

व्याख्याः वशादि कृत् प्रत्यय को इट् न हो।

सुशर्मा (शोभनं श्णाति अच्छी तरह हिंसा करता है)–सु–पूर्वक शॄ धातु से 'अन्येभ्योपि दश्यते' सूत्र से मनिन् प्रत्यय हुआ, मन् शेष रहा। आर्धघातुक होने से मन् के परे रहते ॠकार को अर् गुण हुआ। वलादि होने से प्राप्त इट् का 'नेड् वशि कृति' से निषेध हो गया। सुशर्मन् बना। तब प्रथमा के एकवचन में रूप बना।

प्रातरित्वा (प्रातरेति, प्रातः जानेवाला)–प्रातर्–पूर्वक इण् धातु से क्वनिप् प्रत्यय हुआ। फिर तुक् आगम होने पर 'प्रातरित्वन्' शब्द बना। प्रथमा के एकवचन में रूप बना।

इन दोनों शब्दें के रूप यज्वन् के समान बनते हैं।

विड्–वनोरनुनासिकस्यात् 6.4.41

अनुनासिकस्यात्स्यात्। विजायत इति विजावा। ओण अपनयने अवावा। विच्रुष रिध् हिसायाम। रोट्, रेट्, सुगण्।

व्याख्याः विट् और वन् प्रत्यय परे रहते अनुनासिक वर्ण को आकार हो।

वन् से क्वनिप् और वनिप् दोनों लिये जाते हैं, क्योंकि इन दोनों का वन्, शेष रहता है।

विट् प्रत्यय वेद में होता है, वैदिक प्रक्रिया में उदाहरण मिलेगा।

विजावा (विजयते, अनेक रूप में होनेवाला)–विपूर्वक जन् धातु से 'अन्येभ्योपि दश्यन्ते ३.२.७५।।' से वनिप् प्रत्यय हुआ और तब प्रकृत सूत्र से अनुनासिक नकार को आकार और उसका पूर्व अकार के साथ सवर्णदीर्घ होकर 'विजावन्' शब्द बना। प्रथमा के एकवचन में उक्त रूप सिद्ध हुआ।

इसके रूप राजन् के समान बनते हैं।

अवावा (पाप से हटाने वाली, ब्राह्मणी)–'ओण' अपनयने धातु से वनिप् प्रत्यय हुआ। 'ओण् वन्' इसस्थिति में 'विड्वनोरनुनासिकस्यात' से णकार को आकार होने पर 'ओ आवन्' यह दशा हुई। यहां ओकार को अव् आदेश हुआ। तब 'अवावन्' शब्द बना। 'राजन्' के समान इसके रूप बनते हैं। यह प्रथमा के एकवचन का रूप है।

रोट्, रेट् (हिंसक)–रुष् और रिष् धातु से विच प्रत्यय हुआ। उसका सर्वापहार लोप होने पर लघूपध गुण होकर रोष् और रेष् शब्द बना। प्रथमा के एकवचन में सु के सकार का लोप होने पर षकार को जश् डकार होकर रूप बने।

सुगण् (सुष्ठु गणयति, अच्छा गिननेवाला)–सु पूर्वक गण् धातु से विच् प्रत्यय हुआ। उसका सर्वापहार लोप होने पर 'सुगण्' शब्द बना। प्रथमा के एकवचन में उक्त रूप सिद्ध हुआ।

क्विप् च 3.2.76

अयमपि दश्यते। उखास्रत् पर्णध्वत्। वाहभ्रट्।

व्याख्या: क्विप् प्रत्यय भी धातु से हो कर्ता आदि में।

क्विप् का विच् के समान सर्वापहार लोप होता है। कित् होने से गुण वद्धि का निषेध और यदि धातु में नकार हो तो उसका लोप होता है। पित् होने से यदि धातुह्रस्वान्त हो तो तुक् आगम होता है।

उखास्रत् (उखायाः स्रंसते–हांडी से गिरनेवाला)–पचम्यन्त उखा पूर्वक स्रंस् धातु से प्रकृत सूत्र के द्वारा क्विप् प्रत्यय हुआ उसका सर्वापहार लोप हुआ। 'अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति' से नकार का लोप हुआ। उपपद–समास और सुप् ङसि का लोप होने पर 'उखास्रस्' प्रातिपदिक बना। प्रथमा के एकवचन में 'वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहा दः' से सकार को दकार और उसे 'वावसाने' से वैकल्पिक चर् होकर रूप बना।

पर्ण-ध्वत् (पत्तों से गिरनेवाला)–पूर्ववत् क्विप् प्रत्यय और अनुनासिक लोप तथा सकार को दकार होकर रूप बना।

वाह-भ्रट् (वाहात् भ्रश्यति–घोड़े से गिरनेवाला)–वहां पूर्ववत् क्विप अनुनासिक लोप होने पर प्रथमा के एकवचन में शकार को 'व्रश्चभ्रस्ज–' से षकार और उसे जश् डकार तथा चर विकल्प होकर रूप बना।

सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये 3.2.78

अज्ञातयर्थे सुपि धातार्णिनिः, ताच्छील्ये द्योत्ये। उष्ण-भोजी।

व्याख्या: जातिवाचक से भिन्न सुबन्त उपपद रहते धातु से णिनि प्रत्यय हो, ताच्छील्य अर्थ में।

ताच्छील्य का अर्थ स्वभाव (आदत) है।

उष्ण-भोजी (गरम भोजन करने की आदतवाला, उष्णं भुङ्क्ते तच्छीलः)–यहां उष्णम् सुबन्त जो कि जातिवाचक नहीं, गुणवाचक है, उपपद रहते भुज् धातु से ताच्छील्य अर्थ में प्रकृत सूत्र से णिनि प्रत्यय हुआ। उपपद समास और सुप् अम् का लोप तथा लधूपध गुण होने पर उष्णभोजिन् प्रातिपदिक बना। प्रथमा के एकवचन में उपधादीर्घ और नकार का लोप होकर उक्त रूप सिद्ध हुआ।

मनः 3.2.82

सुपि मन्यतेर्णिनिः स्यात्। दर्शनीय-मानी।

व्याख्या: सुबन्त उपपद रहते मन् धातु से णिनि प्रत्यय हो।

दर्शनीय-मानी (सुन्दर समझनेवाला, दर्शनीयं मन्यते)–यहां दर्शनीयम् सुबन्त उपपद रहते मन् धातु से णिनि प्रत्यय हुआ। उपपद–समास, सुप् अम् का लोप और उपधा अकार को वद्धि होने पर 'दर्शनीयमानिन्' यह इन्नन्त शब्द बना। प्रथमा के एकवचन में उपधावद्धि और नकार का लोप होने पर रूप सिद्ध हुआ।

आत्ममाने खश्च 3.2.83

स्वकर्मके मनने वर्तमानान्मन्यतेः सुपि खश् स्यात् चात् णिनिः। पण्डितम् अत्मानं मन्यते पण्डितं-मन्यः, पण्डित-मानी।

व्याख्याः स्वकर्मक मनन अर्थ में वर्तमान मन् धातु से सुबन्त उपपद रहते खश् प्रत्यय भी हो।

स्वकर्मक मनन का तात्पर्य है अपने को मानना। खश् के शित् होने से सार्वधातुक संज्ञा होने पर श्यन् होता है। श्यन् के अकार का खश् के अकार के साथ 'अतो गुणे' से पररूप हो जाता है, खित् होने से पूर्व अजन्त शब्द को और अरुष्, द्विषत् को 'अरुर्द्विषद् अजन्तस्य मुम् ६.३.६७।।' सूत्र से मुम् आगम होता है।

चात् णिनिरिति–सूत्र में च (भी) होने से णिनि प्रत्यय भी होता है।

पण्डितं-मन्यः (पण्डितमात्मानं मन्यते अपने को पण्डित माननेवाला) यहां 'पण्डितम्' इस सुबन्त के उपपद रहते मन् धातु से खश् प्रत्यय हुआ। उपपद–समास, सुप अम् का लोप, धातु से विकरण श्यन् होने के साथ 'अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्' से मुम् आगम हुआ। तब 'पण्डितं–मन्य' यह अकारान्त प्रातिपदिक बना। प्रथमा के एकवचन में रूप बना।

पण्डित-मानी–खश् के अभावपक्ष में चकार के द्वारा णिनि प्रत्यय हुआ। पूर्ववत् समास, सुप् का लोप हुआ। उपधावद्धि होने पर इन्नन्तप्रातिपदिक बन कर प्रथमा के एकवचन में उपधादीर्घ और नकार का लोप होने पर रूप सिद्ध हुआ।

खित्यनव्ययस्य 6.3.66

खिद्न्ते परे पूर्वपदस्य ह्रस्वः, न-त्वव्ययस्य। ततो मुम्। कालिं-मन्या।

व्याख्याः खिदन्त परे रहते पूर्वपद को ह्रस्व हो, परन्तु अव्यय को न हो।

कालिंमन्या (आत्मानं कालीं मन्यते, अपने को जो काली समझती हो)–यहां कालीम् सुबन्त उपपद रहते मन् धातु से खश् प्रत्यय हुआ। उपपद–समास और अम् का लोप, श्यन, पूर्वपद काली के ईकार को प्रकृत सूत्र से ह्रस्व, मुम् आगम, स्त्रीत्व विवक्षा में टाप होने पर 'कालिंमन्या' प्रातिपदिक बना। उसके प्रथमा के एकवचन में उक्त रूप सिद्ध हुआ।

करणे यजः 3.2.85

करणे उपपदे भुतार्थवत्तेर्णिनिः कर्तरि। सोमेनेष्टवान् सोम-याजी। अग्निष्टोम-याजी

व्याख्याः करण उपपद रहते भूतकाल में यज् धातु से णिनि प्रत्यय हो कर्ता अर्थ में।

सोम-याजी (जिसने सोमयाग किया हो)–यहां 'सोम टा यज' से भूतकाल में कर्ता अर्थ में प्रकृत सूत्र से णिनि प्रत्यय हुआ। उपपद समास और सुप् टा का लोप होने पर 'अत उपधायाः' से उपधावद्धि होकर 'सोमयाजिन्' यह शब्द बना। इसके प्रथमा के एकवचन में उपधादीर्घ और न लोप होकर रूप सिद्ध हुआ।

अग्निष्टोम-याजी (जिसने अग्निष्टोम याग किया हो)–यहां भी करण उपपद रहते भूतकाल में कर्ता अर्थ में यज् धातु से णिनि प्रत्यय होकर पूर्ववत रूप सिद्ध हुआ।

दशेः क्वनिप् 3.2.94

कर्मणि भूते। पारं दष्टवान्-पार-दश्वा।

व्याख्याः कर्म उपपद रहते भूतकाल में वर्तमान दश् धातु से कर्ता में क्वनिप् प्रत्यय हो।

पार-दश्वा (जिसने पार देख लिया है पूर्ण)—यहां 'पार अम् दश्' से भूतकाल में कर्ता में प्रकृत सूत्र से क्वनिप् प्रत्यय हुआ। उपपद समास और सुप् अम् का लोप होने पर 'पारदश्वन्' यह नकारान्त प्रातिपदिक बन गया। प्रथमा के एकवचन में उपधादीर्घ और नकार का लोप होकर रूप सिद्ध हुआ।

राजनि युधि कृञः 3.2.95

क्वनिप् स्यात्। युधिरन्तर्भावितण्यर्थः। राजानं योधितवान्-राजयुध्वा राज-कृत्वा

व्याख्याः राजन् कर्म यदि उपपद हो तो युध् और कृञ धातु से क्वनिप् प्रत्यय हो।

युधीति—युध् धातु में णि का अर्थ इसके अन्दर छिपा होता है।

राज-युध्वा (जिसने राजा को लड़वाया हो)—यहां राजन् अम् युध् से प्रकृत सूत्र के द्वारा क्वनिप् प्रत्यय हुआ। उपपद—समास और सुप् अम् का लोप और नकार का लोप होने पर 'राजयुध्वन्' यह नान्त प्रातिपदिक बना। प्रथमा के एकवचन में उपधादीर्घ और नकार का लोप होकर रूप सिद्ध हुआ।

राज-कृत्वा (राजानं कृतवान्, जिसने राजा बनाया हो)—यहां 'राजन् अम् कृ' से क्वनिप् हुआ। उपपद—समास, सुप् अम् का लोप, राजन् के नकार का लोप और 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' से तुक् होकर 'राजकृत्वन्' प्रातिपदिक बना। प्रथमा के एकवचन में पूर्ववत् रूप सिद्ध हुआ।

सहे च 3.2.96

'कर्मणि' इति निवत्तम्। सह योधितवान्-सह-युध्वा। सह-कृत्वा।

व्याख्याः 'सह' उपपद रहते भी युध् और कृ धातु से क्वनिप् प्रत्यय हो।

कर्मणि इति—'कर्मणि' इसकी निवत्ति हो गई अर्थात् 'कर्मणीति विक्रियः ३.२.९५।।' सूत्र से 'राजनि युधि कृञः' इस सूत्र में जो 'कर्मणि' इस पद की अनुवत्ति आई वह इस सूत्र में नहीं आती।

सह-युध्वा (साथ जिसने लड़ाया हो)—यहां सह उपपद रहते युध धातु से क्वनिप् प्रत्यय होने पर 'सहयुध्वन्' प्रातिपदिक बना। प्रथमा के एकवचन में रूप सिद्ध हुआ।

सह-कृत्वा—(सह कृतवान् साथ जिसने किया हो)—यहां सह उपपद रहते कृ धातु से क्वनिप् प्रत्यय हुआ। 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' से तुक् होने पर 'सहकृत्वन्' प्रातिपदिक बना। प्रथमा विभक्ति के एकवचन में पूर्ववत् रूप सिद्ध हुआ।

इन पारदश्व्न् आदि क्वनिबन्त शब्दों के रूप यज्वन् के समान बनते हैं और स्त्रीलिङ्ग में 'वनो र च ४.१.७।। सूत्र से ङीप् प्रत्यय तथा रकार होकर 'पारदश्वरी' आदि रूप होते हैं।

सप्तम्यां जनेर्डः 3.2.97

व्याख्याः सप्तम्यन्त उपपद रहते जन् धातु से ड प्रत्यय हो।

ड प्रत्यय का डकार इत्संज्ञक है। डित् होने से इसके परे रहते टि का लोप होता है।

तत्पुरुषे कृति बहुलम् 6.3.14

ङेरलुक् सरसि-जम्, सरोजम्।

व्याख्याः तत्पुरुष समास में कृत् प्रत्यय परे रहते सप्तमी का लोप नहीं होता बहुल से।

'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः २.४.७१।।' से प्राप्त सुप् लोप का यह निषेध करता है। बहुल कहने से कभी होता है कभी नहीं।

सरसिजम्, सरोजम् (तालाब में पैदा होनेवाला, कमल)—यहां 'सरस् ङि ज्' से 'सप्तम्यां जनेर्डः' से ड प्रत्यय हुआ। डित् होने से टि अन् का लोप हुआ। 'तुम्पुरुषे कृति बहुलम्' से सप्तमी का बहुल अलुक् हुआ।

जब लोप नहीं हुआ तब 'सरसिज' प्रातिपदिक बना और जब लोप हो गया तब सकार के रु और उसे 'हशि च' से उकार होने पर गुण होकर 'सरोज' बना। इन दोनों के नपुंसकलिङ्ग प्रथमा विभक्ति में उक्त रूप सिद्ध हुए।

उपसर्गे च संज्ञायाम् 3.2.99

प्रजा स्यात् सन्ततौ जने।

व्याख्याः उपसर्ग उपपद् रहते जन् धातु से ड प्रत्यय हो संज्ञा में।

प्रजा (सन्तति)—प्र उपसर्ग पूर्वक जन् धातु से संज्ञा में ड प्रत्यय हुआ। टि अन का लोप होने पर 'प्रज' प्रातिपदिक से स्त्रीत्व—विवक्षा में टाप होकर 'प्रजा' शब्द बना। प्रथमा के एकवचन में वह रूप सिद्ध हुआ।

प्रजा स्यादिति—इसका अर्थ है प्रजा शब्द सन्तति और जन। (प्रजाजन) अर्थ में है अर्थात् इनकी संज्ञा है।

क्त-क्तवतू निष्ठा 1.1.26

एतौ निष्ठासंज्ञौ स्तः।

व्याख्याः क्त और क्तवतु प्रत्ययों की निष्ठा संज्ञा होती है।

निष्ठा 3.2.1०2

भूतार्थवर्त्तधतोर्निष्ठा स्यात्। तत्र 'तयोरेव-३.४.७०।।' इति भावकर्मणोः क्तः, 'कर्तरि कृद् ३.४.६७।।' इति इध कर्तरि क्तवतुः। उवितौ स्नातं मया। स्तुतस्त्वया विष्णुः। विश्वं कृतवान् विष्णुः।

व्याख्याः भूतकाल में वर्तमान धातु से निष्ठा प्रत्यय हो।

तत्रेति—उसमें से 'तयोरेव—३.४.७०।।' सूत्र से क्त प्रत्यय भाव और कर्म में होता है और 'कर्तरि कृत् ३.४.७।।' से क्तवतु कर्ता में।

इसलिये क्त प्रत्ययान्त क्रिया के कर्ता से ततीया और क्तवत्वन्त क्रिया के कर्ता से प्रथमा तथा प्रत्ययान्त के कर्म से प्रथमा तथा क्तवत्वन्त के कर्म से द्वितीया आती है।

क्त कर्म और भाववाच्य में क्तवतु कर्तवाच्य में होता है।

उकाविताविति—उकार और ककार इत्संज्ञक है। उकार क्तवतु का और ककार दोनों का इत् है। इस प्रकार क्त का त और क्तवतु का तवत् शेष रहता है। क्त प्रत्यय से शब्द आकारान्त और क्तवतु से हल्न्त तकारान्त बनता है।

धातु से विहित होने से तथा तिङ् शित् से भिन्न होने के कारण 'आर्धधातुकंशेषः' से इनकी आर्धधातुक संज्ञा होती है।

ये दोनों प्रत्यय बलादि है। अतः सेट् धातु के आगे इनको इट् होता है।

स्नातं मया (मैंने स्नान कर लिया)—स्ना धातु से अकर्मक होने के कारण भाव में क्त प्रत्यय होकर 'स्नात' शब्द बना। कृदन्त होने से इसकी प्रातिपदिक संज्ञा हुई। सामान्य में नपुंसकलिङ्ग और प्रथमा का एकवचन आया। इस प्रकार यह रूपसिद्ध हुआ।

'मया' यह ततीयान्त में कर्ता है क्योंकि यहां भाव में क्त प्रत्यय होने से 'स्नातम्' यह क्रिया भाववाच्य है। भाववाच्य में कर्ता के अनुक्त होने से ततीया हुई। यह धातु अकर्मक है, इसलिये भाव में निष्ठा प्रत्यय आया। यह दिखाने के लिए 'मया' साथ दिया है।

स्तुतस्त्वया विष्णुः (तुमने विष्णु की स्तुति की)—यहां स्तु (स्तुति) धातु से कर्म में निष्ठा प्रत्यय क्त के कित् होने से गुण और धातु के अनिट् होने से इट् नहीं हुआ। प्रातिपदिक संज्ञा होकर प्रथमा के एकवचन में रूप बना।

स्तु धातु सकर्मक है, इसलिये उससे कर्म में निष्ठा प्रत्यय हुआ। यही दिखाने के लिये 'त्वया विष्णुः' ये साथ दिये

गये हैं। कर्म में प्रत्यय होने से कर्ता अनुक्त है, इसलिये 'त्वया' यहां कर्ता से ततीया विभक्ति और 'विष्णुः' यहां उक्त होने से कर्म से प्रथमा विभक्ति हुई।

विश्वं कृतवान् विष्णुः (विष्णु ने संसार को बनाया)–यहां कृ धातु से कर्ता में क्तवतु प्रत्यय होकर 'कृतवत्' प्रातिपदिक बना। प्रथमा के एकवचन में क्तवतु के उगित् होने से 'उगिदचां सर्वनामस्थानेधातोः ७.१.७०।।' से नुम् हुआ और नान्त की उपधा को 'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ ६.४.८।।' से दीर्घ तथा सकार का हल्ङ्यादिलोप होकर रूप सिद्ध हुआ।

कर्ता में क्तवतु हुआ। इसलिये कर्ता के उक्त होने से 'विष्णुः' यहां प्रथमा विभक्ति और 'विश्वम्' यहां कर्म से अनुक्त होने के कारण द्वितीया विभक्ति हुई।

र-दाभ्यां निष्ठा-तो नः पूर्वस्य चदः 8.2.42

रदाभ्यां परस्य निष्ठा-तस्य नः स्यात् निष्ठापेक्षया पूर्वस्य धातोर्दस्य च। शॄ हिंसायाम्, ॠत इत् रपरः णत्वम्-शीर्णः। भिन्नः। छिन्नः।

व्याख्याः रेफ और दकार से परे निष्ठा तकार को नकार आदेश हो तथा निष्ठा से पूर्व धातु के दकार को भी।

शॄ हिंसायाम् इति–'शीर्णः' (नष्ट हुआ)–शॄ (हिंसा) धातु से कर्म में निष्ठा प्रत्यय क्त हुआ। 'ॠत इद् धातोः' से ॠकार की इर् आदेश और इकार को 'हलि च' से दीर्घ होने पर 'शीर् त' इस दशा में प्रकृत सूत्र से रेफ से पर होने के कारण निष्ठा के तकार को नकार हुआ। तब णत्व होने पर 'शीर्ण' प्रातिपदिक बना। प्रथमा के एकवचन में उक्त रूप–सिद्ध हुआ।

भिन्नः, छिन्नः–भिद् (फाड़ना) और छिद् (काटना) धातुओं से कर्म में निष्ठा प्रत्यय क्त हुआ। दकार से पर होने के कारण निष्ठा के तकार की ओर निष्ठा से पूर्व धातु के दकार को भी नकार प्रकृत सूत्र से होने पर 'भिन्न' और 'छिन्न' प्रातिपदिक बने। प्रथमा के एकवचन में रूप सिद्ध हुए।

संयोगादेरातो धातोर्यण्वतः 8.2.43

निष्ठा-तस्य न स्यात्। द्राणः। ग्लानः।

व्याख्याः जो संयोगादि, आकारान्त और यण्वाली धातु हो उससे निष्ठा तकार को नकार हो।

द्राणः–द्रा (कुत्सित गति, अदा. पर. अनिट्) धातु से निष्ठा प्रत्यय क्त हुआ। द्रा धातु संयोगादि भी है, अकारान्त भी है और रकार होने से यण्वाली भी है। इसलिये प्रकृत सूत्र से निष्ठा के तकार को रेफ होने पर उसे णत्व हुआ।

ग्लानः–ग्लै (ग्लानि, भ्वा. पर. अ.) धातु से क्त प्रत्यय हुआ। यहां 'आदेच उपदेशेशिति' से ऐकार को आकार हुआ। तब यह आकारान्त हो गया, यह संयोगादि भी है, लकार के कारण यण्वाली भी है। इसलिये इससे पर निष्ठा के तकार को प्रकृत सूत्र से नकार हुआ।

ल्वादिभ्यः 8.2.44

एकविंशतेलूाादिभ्यः प्राग्वत्। लूनः। ज्या-धातुः, 'ग्रहिज्या–' इति संप्रसारणम्।

व्याख्याः क्र्यादिगण की लूा आदि इक्कीस धातुओं से पर निष्ठा के तकार को नकार हो।

लूनः–लूा, (काटना, क्र्या. उभ. से.) धातु से निष्ठा प्रत्यय क्त हुआ। प्रकृत सूत्र से तकार को नकार हुआ।

हलः 6.4.2

अङ्गावयवाद् लः परं यत् संप्रसारणम् तदन्तस्य दीर्घः। जीनः।

व्याख्याः अङ्ग के अवयव हल् से पर जो संप्रसारण, तदन्त को दीर्घ हो।

जीनः–ज्या (जीर्ण होना, क्र्या. पर. अ.) धातु से निष्ठा प्रत्यय क्त हुआ। लू आदियों में होने से निष्ठा के तकार

को नकार हुआ। 'ग्रहिज्या–' से यकार को संप्रसारण और 'संप्रसारणाच्च' से आकार का पूर्व रूप तथ प्रकृत सूत्र 'हलः ६.४.२।।' से इकार को दीर्घ होकर 'जीन' प्रातिपदिक बना, तब प्रथमा केएकवचन में उक्त रूप सिद्ध हुआ।

ओदितश्च 8.2.45

भुजो-भुग्नः। टुओश्वि-उच्छूनः।

व्याख्याः ओदित् धातुओं से पर निष्ठा के तकार को नकार आदेश हुआ।

भुग्नः—भुजो (तोड़ना, रु. पर. अ.) धातु से निष्ठा प्रत्यय क्त हुआ। धातु के ओदित् होने से प्रकृत सूत्र से निष्ठा तकार को नकार हुआ। तब 'चोः कुः' से चवर्ग को कवर्ग गकार होने पर 'भुग्न' प्रातिपदिक बना। प्रथमा के एकवचन में उक्त रूप सिद्ध हुआ।

उच्छूनः (सूजा हुआ)—उद्—उपसर्ग पूर्वक टु—ओ—श्वि (भ्वा. उ. से.) धातु से निष्ठा प्रत्यय क्त होने पर ओदित् होने के कारण उसके तकार को नकार हुआ और यजादि् होने से धातु के वकार को संप्रसारण उकार, इकार का 'संप्रसारणाच्च' से पूर्वरूप, 'हलः' से दीर्घ और 'श्वीदितो निष्ठायाम्' से इट् का निषेध होने पर 'उच्छून' प्रातिपदिक बनकर प्रथमा के एकवचन में रूप सिद्ध हुआ।

शुषः कः 8.2.51

निष्ठा-तस्य कः। शुष्कः।

व्याख्याः शुप् धातु से पर निष्ठा तकार को ककार होता है।

शुष्कः (सूखा हुआ)—शुष् (दि. पर. अ.) धातु के क्त प्रत्यय होने पर प्रकृत सूत्र से उसके तकार को ककार हुआ।

पचो वः 8.2.52

पक्वः। क्षै हर्षक्षये।

व्याख्याः पच् धातु से पर निष्ठा तकार को वकार आदेश होता है।

पक्वः—पच् (पकाना, भ्वा. उ. अ.) धातु से निष्ठा क्त प्रत्यय होने पर उसके तकार को प्रकृत सूत्र से वकार होकर रूप बना।

क्षायो मः 8.2.53

क्षामः।

व्याख्याः क्षै धातु से पर निष्ठा के तकार को मकार आदेश हो।

क्षामः—क्षै (कृश होना, भ्वा. पर. अ.) धातु से निष्ठा प्रत्यय क्त होने पर 'आदेच उपदेशेशिति' से ऐकार को आकार हुआ। तब प्रकृत सूत्र से निष्ठा तकार को मकार का रूप बना।

निष्ठायां सेटि 6.4.52

णेर्लोपः। भावितः, भावितवान् दह हिंसायाम्—

व्याख्याः सेट् निष्ठा परे रहते णि का लोप हो।

भावितः, भावितवान्—ण्यन्त भू धातु से निष्ठा प्रत्यय क्त और क्तवतु हुए। दोनों वलादि अर्धधातुक हैं इसलिये उनको इट् आगम हुआ। तब 'निष्ठायां सेटि' से णि का लोप हुआ। प्रथमा के एकवचन में रूप सिद्ध हुए।

दढः स्थूल-वलयोः 7.2.20

स्थूले बलवति च निपात्यते।

व्याख्याः स्थूल और बलवान् अर्थ में 'दढ' शब्द का निपातन होता है।

दह् (हिंसा) धातु से निष्ठा प्रत्यय क्त होने पर हकार को दकार 'झषस्त थोर्धोधः' से तकार को धकार और फिर ष्टुत्व ढकार हुआ। पूर्व ढकार का 'ढो ढे लोपः' से लोप होने पर 'दढ' प्रातिपदिक बना। प्रकृत सूत्र से पूर्वोक्त विशेष अर्थों में इसका निपातन होता है।

दधातेर्हिः 7.4.42

तादौ किति। हितम्।

व्याख्याः धा धातु को 'हि आदेश हो तकारादि कित् प्रत्यय परे रहते।

हितम्—धा (धारण, पोषण, जुहो. उ. अ.) धातु से निष्ठा प्रत्यय क्त होने पर प्रकृत सूत्र से धा को हि आदेश हुआ। 'हित' प्रातिपदिक से नपुंसकलिङ्ग प्रथमा के एकवचन में उक्त रूप सिद्ध हुआ।

दो दद् घोः 7.4.46

घुसंज्ञकस्य 'दा' इत्यस्य 'दद्' स्यात् तादौ किति। चर्त्वम्—दत्तः।

व्याख्याः घु—संज्ञक दो धातु को दद् आदेश हो तकारादि कित् प्रत्यय परे रहते।

दत्तः—दो धातु से निष्ठा प्रत्यय क्त होने पर प्रकृत सूत्र से दा को दद् आदेश हुआ, तब दकार को चर् तकार होने पर 'दत्त' प्रातिपदिक बना। प्रथमा के एकवचन पुंल्लिंग में उक्त रूप सिद्ध हुआ।

लिटः कानज् वा 3.2.106

व्याख्याः लिट् को कानच् विकल्प से हो।

कानच् के ककार और चकार इत्संज्ञक हैं। 'आन' शेष रहता है।

क्वसुश्च 3.2.107

लिटः कानज् क्वसुश्च वा स्तः। तङानावात्मेनपदम् चक्राणः।

व्याख्याः लिट् के स्था में क्वसु भी आदेश विकल्प से होता है।

क्वसु के ककार और उकार इत्संज्ञक हैं। 'वस्' शेष रहता है।

तङानाविति—कानच् की आत्मनेपद संज्ञा है। इसलिये आत्मनेपदी धातुओं से ही यह होता है।

चक्राणः—कृ धातु से लिट् के स्थान में कानच् हुआ। लिट् के स्थान में होने के कारण कानच् के परे रहते धातु को द्वित्व और अभ्यासकार्य हुआ। इस प्रकार 'चकृ आन' ऐसी स्थिति बन जाने पर यण् और णत्व होकर 'चक्राण' प्रातिपदिक बना, प्रथमा के एकवचन में उक्त रूप सिद्ध हुआ।

म्वोश्च. 8.2.65

मान्तस्य धातोर्नत्वं म्वोः परतः। जगन्वान्

व्याख्याः मान्त धातु को नकार आदेश हो मकार और वकार परे रहते।

नकार अन्त्य मकार के स्थान में ही होता है।

जगन्वान्—गम् धातु से पर लिट् को क्वसु आदेश हुआ। द्वित्व और अभ्यासकार्य होने पर प्रकृत सूत्र से सकार को नकार आदेश हुआ तब 'जगन्वस्' प्रातिपदिक बना। क्वसु के उगित होने से 'उगिदचां सर्वनामस्थानेधातोः' से नुम् हुआ। 'सान्तमहतः संयोगस्य' से दीर्घ हुआ। सु के सकार का हल्ङ्यादि लोप और क्वसु के सकार का

संयोगान्त लोप होने पर उक्त रूप सिद्ध हुआ।

शेष रूप औट् तक इसी प्रकार बनते हैं—जगन्वांसौ, जगन्वांसः,। जगन्वासम, जगन्वांसौ।

शस् में 'वसोः संप्रसारणम्' से वकार को संप्रसारण उकार होता है। तब मकार को नकार भी नहीं होता। अजादि कित् प्रत्यय परे मिल जाने से 'गमहनजन–' इत्यादि सूत्र से उपधा अकार का लोप होने पर 'जग्मुस् अस्' यह स्थिति बनी। यहां क्वसु के सकार को षकार और विभक्ति के सकार को रुत्व विसर्ग होकर जग्मुः रूप सिद्ध हुआ।

शस् के आगे अजादि विभक्ति में रूप शस् के समान ही बनते हैं। हलादि विभक्तियों में 'वसुस्रंसु–' आदि से सकार को दकार होता है। जैसे–**जग्मुषा, जगन्वद्भ्याम्, जगन्वद्भिः। जग्मुषे, जगन्वद्भ्याम्, जगन्वद्भ्यः। जग्मुषः, जगन्वद्भ्याम, जगन्वद्भ्यः। जग्मुषः, जग्मुषोः, जग्मुषाम्। जग्मुषि, जग्मुषोः, जग्न्वत्सु।**

लटः शत-शानचावप्रथमासमानाधिकरणे 3.2.124

अप्रथमान्तेन समानाधिकरणे लट एतौ वा स्तः। शबादि। पचन्तं चैत्रं पश्य

व्याख्याः अप्रथमान्त अर्थात् प्रथमान्त से भिन्न से समानाधिकरण होने पर लट् के स्थान में शत और शानच् होते हैं।

प्रथमान्त से समानाधिकरण न होना चाहिये, तभी ये शत शानच् प्रत्यय होंगे। इसीलिये उदाहरण में 'पचन्तं चैवं पश्य' द्वितीयान्त को दिया गया है, प्रथमान्त को नहीं।

परन्तु अब प्रथमान्त के समानाधिकरण होने पर भी इसका यथेच्छ प्रयोग होता है, जैसा कि आगे 'लट इत्यनुवर्तमाने' इत्यादि वचन के द्वारा बताया जा रहा है।

शत के शकार और ऋकार इत्संज्ञक हैं। 'अत्' बचता है। इस से प्रातिपदिक तकारान्त हलन्त बनता है। ऋकार इत् होने से यह उगित् है और इसलिये स्त्रीलिङ्ग से ङीप् प्रत्यय होकर दीर्घ ईकारान्त शब्द बनते हैं। शत प्रत्यय परस्मैपदी धातुओं से होता है।

शानच् के शकार और चकार इत्सज्ञक है। 'आन' शेष रहता है, इससे प्रातिपदिक अकारान्त बनता है अतः स्त्रीलिंङ्ग में टाप् होकर आकारान्त हो जाता है। यह 'तङानावात्मनेपदम्' से आत्मनेपद है, अतः आत्मनेपदी धातुओं से ही होता है।

शबादि—शत और शानच् दानों शित् हैं, अतः धातु से विहित होने के कारण ये सार्वधातुक हैं। इसलिये इनके परे रहते यथा प्राप्त शप् आदि विकरण होते हैं।

पचन्तं चैत्रं पश्य (पकाते हुए चैत्र को देखो)—पच् धातु से लट् के स्थान में शत हुआ। शप् प्रत्यय होने पर उसके आकार का 'अतो गुणे' से पररूप होकर 'पचत्' प्रातिपदिक बना। द्वितीया के एकवचन में नुम् होकर रूप सिद्ध हुआ।

आने मुक् 7.2.82

अदन्ताङ्स्य 'मुग्' आगमः स्याद् आने परे। पचमानं चैत्रं पश्य। 'लट्' इत्युनवर्तमाने पुनर्लड्ग्रहणात् प्रथमा सामाधिकरण्ये क्वचित् सन् द्विजः।

व्याख्याः अदन्त अङ्ग को मुक् आगम हो आन परे रहते।

मुक् का मकार शेष रहता है, उक् इत्संज्ञक है।

पचमान चैत्रं पश्य (पकाते हुए चैत्र को देखो)—यहां पच् धातु से पर लट् के स्थान में शानच् हुआ। शप् होने पर अदन्त अङ्ग से पर होने के कारण आन को मुक् आगम होकर 'पचमान' प्रातिपदिक बना। द्वितीया के एकवचन में उक्त रूप सिद्ध हुआ।

स्वादि में शप्, दिवादि में श्यन्, तुदादि में श और चुरादि में शप् होने से अदन्त अङ्ग बन जाता है। अतः इनका

आन परे रहते आगम होता है। शेष गण का धातुओं को मुक् नहीं होता।

यहां 'लट्' इसकी 'वर्तमाने लट्' इस सूत्र से अनुवत्ति होने पर भी फिर जो 'लट्' का ग्रहण किया गया है—वह इस बात को सूचित करता है कि प्रथमान्त के साथ सामानाधिकरण्य होने पर कहीं कहीं ये शत अैर शानच् प्रत्यय आते हैं।

सन् द्विजः (अच्छा ब्राह्मण)—यहां अस् धातु के प्रथमान्त के साथ सामानाधिकरण्य होने पर भी लट् के स्थान में शत हुआ। तब 'श्नसोरल्लोपः' से अकार का लोप होने पर 'सत्' प्रातिपदिक बना। प्रथमा में एकवचन में नुम्, हल्ङ्यादि लोप, संयोगान्त लोप होने पर उक्त रूप सिद्ध हुआ।

पहले उदाहरण द्वितीयान्त दिये गये हैं इस अभिप्राय से कि प्रथमान्त के साथ ये प्रत्यय नहीं होते। यद्यपि मूल में 'क्वचित्' कहने से प्रथमान्त से प्रथमान्त के साथ सामानाधिकरण्य होने पर कहीं—कहीं इनके प्रयोग की स्वीकृति दी गई है, परन्तु प्रथमान्त के सामानाधिकरण में इनका प्रयोग होता बहुत है। जैसे—ग्रामं गच्छन् तणं स्पशति—गांव जाते हुए तण को छूता है। आगच्छन् वैनतयोपि पदमेकं न गच्छति—न जाते हुए गरुड़ भी एक पैर नहीं जाता—इत्यादि।

विदेः शतुर्वसुः 7.1.66

वेत्तेः परस्य शतुर्वसुरादेशो वा। विदन्। विद्वान।

व्याख्याः विद् ज्ञान, अदा. पर. अ.) धातु से पर शत के स्थान में 'वसु' आदेश हो विकल्प में।

तौ सत् 3.2.127

तौ शत शानचौ सत्संज्ञौ स्तः।

व्याख्याः उन शत और शानच् की सत् संज्ञा हो।

वसु का उकार इत् है। उगित होने से नुम् होता है।

विद्वान, विदन्—विद् धातु से पर लट् के स्थान में शत हुआ और उसके स्थान में प्रकृत सूत्र से वसु आदेश विकल्प से। तब विद्वस् प्रातिपदिक के प्रथमा के एकवचन में उगिद् होने से नुम् सान्तसंयोग होने से उपधादीर्घ, हल्ङ्यादिलोप और संयोगान्तलोप होने पर और अभावपक्ष में नुम्, हल्ङ्यादि लोप और संयोगान्त लोप होने पर रूप सिद्ध हुआ।

विद्वस् के रूप षड्लिङ्ग में आ चुके हैं विदत् के रूप भी शत प्रत्ययान्तों के समान बनेंगे।

लटः सद् वः 3.3.14

व्यवस्थितविभाषेयम्। तेनाप्रथमासामाधिकरण्ये प्रत्ययोत्तरपदयोः संबोधने लक्षणहेत्वोश्च नित्यम्। करिष्यन्तं करिष्यमाणं पश्य।

व्याख्याः लट् के स्थान में सत् प्रत्यय विकल्प से हों।

व्यवस्थितेति—यह व्यवस्थित—विभाषा है अर्थात् यह कार्य किसी स्थान में होता है और किसी में नहीं, यही व्यवस्था है, इसलिये यह व्यवस्थित विभाषा है।

तेनेति—व्यवस्थित—विभाषा के कारण अप्रथमा—सामानाधिकरण्य में प्रत्यय और उत्तरपद परे रहते, संबोधन में और लक्षण तथा हेतु अर्थ में नित्य आदेश होते हैं।

संबोधन आदि में विधान करनेवाले सूत्र लघुकौमुदी में नहीं आते, उनका यहां उल्लेख उचित नहीं है।

करिष्यन्तं करिष्यमाणं पश्य (आगे करने वाले को देख)—यहां कृ धातु से लट् को शत और शानच् आदेश हुआ। स्य और इट् होकर 'करिष्यत्' और 'करिष्यमाण' प्रातिपदिक बने। द्वितीया एकवचन में उक्त रूप सिद्ध हुए।

आ क्वेस्तच्छील-तद्धर्म-तत्साधुकारिषु 3.2.134

क्विपमभिव्याप्य वक्ष्यमाणाः प्रत्ययाः, तच्छीलादिषु कर्तषु बोध्याः।

व्याख्याः क्विप् तक कहे जानेवाले प्रत्यय तच्छील, तद्धर्म और तत्साधुकारी कर्ता अर्थ में होते हैं—यह समझना चाहिये।

तृन् 3.2.135

कर्ता कटान्।

व्याख्याः धातु से तन् प्रत्यय हो कर्ता अर्थ में।

कर्ता कटान् (चटाई बनाने के स्वभाव वाला, चटाई बनाना धर्मवाला, चटाई अच्छी बनानेवाला)—यहां कृ धातु से पूर्व सूत्र की सहायता से प्रकृत सूत्र से तन् प्रत्यय हुआ। आर्धधातुक होने से तन् के परे रहते गुण पर 'कर्त' प्रातिपदिक बना। प्रथमा के एकवचन में उक्त रूप बना।

'कटान्' यह कर्म है। 'कर्तकर्मणो' कृति' से षष्ठी प्राप्त थी। उसका 'नलोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतनाम्' से निषेध हुआ। तब कर्म में द्वितीया ही हुई।

जल्प-भिक्ष-कुट्ट-लुण्ट-वङः षाकन् 3.2.155.

व्याख्याः जल्प्, भिक्ष, कुट्ट, लुण्ट्, वङ्, इन धातुओं से षाकन् प्रत्यय हो तच्छील आदि कर्ता अर्थ में।

षः प्रत्ययस्य. 1.3.6

प्रत्ययस्यादिः ष इत्संज्ञः स्याम् जल्पाकः। भिक्षाकः। कुट्टाकः। लुण्टाकः। वराकः, बराकी।

व्याख्याः प्रत्यय के आदि षकार की इत्संज्ञा हो।

जल्पाकः (बोलने के स्वभावाला)—जल्प् धातु से षाकन् प्रत्यय पूर्व सूत्र से हुआ, प्रकृत सूत्र से षकार की इत्संज्ञा हुई।

इसी प्रकार **भिक्षाकः** (भीख मांगने के स्वभाववाला, भिखारी) **कुट्टाकः** (कूटने के स्वभाववाला) **लुण्टाकः** (लूटने के स्वभावाला, लुटेरा) **वराकः** (बेचारा)—इन शब्दों की सिद्धि होती है।

वराकी—'वराक' शब्द से स्त्रीत्व विवक्षा में ङीप् प्रत्यय होकर रूप सिद्ध हुआ। पाकन् पित् है। पित् होने का फल है स्त्रीलिङ्ग में 'षिद् गौरादिभ्यश्च' से ङीप् प्रत्यय।

सनाशंस-भिक्ष उः. 3.2.168

चिकीर्षुः। आशंसुः। भिक्षुः।

व्याख्याः सन्प्रत्ययान्त धातुओं, आ शंस् और भिक्ष् धातुओं से उ प्रत्यय हो।

चिकीर्षुः—सन्नन्त चिकीर्षधातु से उ प्रत्यय हुआ। तब 'अतो लोपः' से अकार का लोप होने पर प्रातिपदिक संज्ञा हुई। प्रथमा के एकवचन में रूप सिद्ध हुआ।

आशंसुः (आशा करनेवाला)—यहां आङ् पूर्वक शंस् धातु से प्रकृत सूत्र के द्वारा उ प्रत्यय हुआ। तब प्रथमा के एकवचन में रूप बना।

भिक्षुः (भिखारी)—भिक्ष् धातु से प्रकृत सूत्र के द्वारा उ प्रत्यय हुआ सब प्रथमा के एकवचन में रूप बना।

भ्राज-भास-धुर्वि-द्युतोर्जि-प-जु-ग्रावस्तुवः क्विप् . 3.2.177

विभ्राट्। भाः।

व्याख्याः (विशेष चमकनेवाला)—वि पूर्वक भ्राज धातु से क्विप् प्रत्यय हो।

विभ्राट् (विशेष चमकनेवाला)–वि पूर्वक भ्राज् धातु से प्रकृत सूत्र के द्वारा क्विप् प्रत्यय हुआ, उसका सर्वापहार लोप होने पर 'विभ्राज' यह हलन्त जकारान्त प्रातिपदिक बना। प्रथमा के एकवचन में 'व्रश्चभ्रस्ज–' से जकार को षकार, उसे जश् डकार और उसे विकल्प से चर् टकार होने पर उक्त रूप बना।

भाः (चमक)–भास् धातु से क्विप् प्रत्यय हुआ। उसका लोप होने पर 'भास्' यह सकारान्त स्त्रीलिङ्ग प्रातिपदिक बना। प्रथमा के एकवचन में सु का हल्ङ्यादि लोप होने पर प्रातिपदिक के सकार को रु और उसे विसर्ग होकर रूप सिद्ध हुआ।

रा (त्) ल् लोपः 6.4.21

रेफात्च्छ्वोःलोपः क्वौ झलादौ क्ङिति। धूः। विद्युत्। ऊर्क। पूः। दशिग्रहणस्यापकर्षाद् जवतेर्दीर्घः। जूः। ग्रावस्तुत्।

व्याख्याः रेफ से पर च्छ और व का लोप हो कि झलादि कित् ङित् परे रहते।

धूः (धुरा)–धुर्व् धातु से 'भ्राजभास–' इत्यादि सूत्र से क्विप् प्रत्यय हुआ। उसका लोप होने पर प्रकृत सूत्र से रेफ से परे होने के कारण वकार का लोप हुआ। तब 'धुर्' प्रातिपदिक से प्रथमा के एकवचन में सु का हल्ङ्यादि लोप 'वोंरुपधायाः–' से उपधा उकार को दीर्घ और रेफ को विसर्ग होने पर रूप सिद्ध हुआ।

विद्युत् (बिजली)–वि पूर्वक धातु से क्विप्, उसका लोप, प्रातिपदिक संज्ञा, सु का हल्ङ्यादि लोप होने पर रूप बना।

ऊर्क् (बली)–ऊर्ज्, क्विप्, उसका लोप होनेपर 'ऊर्ज्' प्रातिपदिक बना। तब प्रथमा के एकवचन में हल्ङ्यादि लोप होने पर 'चोःकुः' से चवर्ग जकार कुत्व गकार होकर रूप बना 'रात्सस्य' के नियम से जकार का लोप नहीं हुआ।

पूः (शहर)–प धातु से पूर्व सूत्र से क्विप् हुआ। उसका सर्वापहार लोप होने पर 'उदोष्ठ्यपूर्वस्य' से ऋकार को उर् हआ। तब 'पुर्' प्रातिपदिक को प्रथमा के एकवचन में 'धूः' के समान रूप सिद्ध हुआ।

दशीति– 'अन्येभ्योपि दश्यते ३.२.१७८ इस सूत्र में दश्यते पद है, इस दश् के ग्रहण का फल है कि अन्य कार्य भी होते हैं, उसी का इस सूत्र में अपकर्ष होने से जु धातु को क्विप् प्रत्यय में दीर्घ भी हो जाता है, तब दीर्घ ऊकारान्त जू (रोगी) शब्द बनता है। इसके रूप 'जूः, जुवौ, जुवः' इत्यादि भू शब्द के मान बनते हैं।

ग्रावस्तुत् (मूर्तिपूजक, पत्थर के गुण गानेवाला)–ग्रावपूर्वक स्तु धातु से क्विप् और उसका लोप हुआ। 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' से तुक् होने पर तकारान्त शब्द बना। प्रथमा के एकवचन में रूप सिद्ध हुआ।

(वा) क्वि (प्) वचि-प्रच्छचायत-स्तु-कटप्रु-जु-श्रीणां दीर्घोसम्त्रसारणं च। 'वक्ति' इति वाक्।

व्याख्याः वच्, पच्छ्, आयत पूर्वक स्तु, कट पूर्वक, प्रु, जु, और श्रि धातु के क्विप् हो, दीर्घ हो और संप्रसारण का अभाव हो।

दीर्घ सग में होता है, संप्रसारण का निषेध केवल प्रच्छ् में क्योंकि उसी को वह प्राप्त है।

वाक् (वाणी)–वक्तीति कहता है– इस विग्रह में वच् धातु से क्विप् और दीर्घ होने पर 'वाच्' प्रातिपदिक बना। प्रथमा के एकवचन में 'चोःकुः' से वकार को कुत्व ककार रूप सिद्ध हुआ।

च्छ्-वोः शूड् अनुनासिके च 6.4.19

सतुक्कस्य छम्य वस्य च क्रमात् 'श' 'ऊठ्' इत्यादेशौ स्तोनुमासिके क्वौ झलादी च क्ङिति। पच्छतीति-प्राट्। आयतं स्तौति-आयतस्तूः। प्रवते-कटप्रूः। जूः–उक्तः। श्रयति हरिम्-श्रीः।

व्याख्याः तुक् सहित छकार और वकार को क्रमशः और ऊठ् आदेश हों अनुनासिक, क्वि और झलादि कित् ङित् परे रहते।

प्राट् (पच्छति–प्रश्न करनेवाला)–प्रच्छ धातु से पूर्व वार्तिक से क्विप्, दीर्घ और संप्रसारण का निषेध, प्रकृत सूत्र से च्छ को श आदेश, 'व्रश्चभ्रस्ज–' से शकार को मूर्धन्य षकार, जश्त्व दकार और चर् टकार होकर प्रथमा के

एकवचन में रूप सिद्ध हुआ।

आयत-स्तूः (आयत स्तौति, विस्तत गुण गानेवाला अर्थात् प्रशंसक)—आयत पूर्वक स्तु धातु से पूर्व वार्तिक के द्वारा क्विप् और दीर्घ होकर दीर्घ ऊकारान्त प्रातिपदिक बना। प्रथमा के एकवचन में सु को रुत्व विसर्ग होकर रूप बना।

इसके रूप—'आयत—स्तूः, आयत—स्तुबौ, आयत—स्तुवः' इत्यादि 'भू' के समान बनते हैं।

कट-प्रूः (कटं प्रवते, चटाई बुननेवाला)—कट पूर्व प्रु धातु से पूर्व वार्तिक से क्विप् और दीर्घ ऊकारान्त प्रातिपदिक बना।

आयत—स्तू के समान इसके भी रूप बनते हैं।

जूरुक्त इति—'जूः' पहले कहा जा चुका है।

श्रीः (लक्ष्मी, श्रयति हरिम्—विष्णु का आश्रय लेती है)—श्रि धातु से पूर्व वार्तिक द्वारा क्विप् और दीर्घ होने पर दीर्घ ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग प्रातिपदिक बना। प्रथमा के एकवचन में ङ्यन्त न होने से सु का लोप नहीं हुआ। इसलिये रुत्व और विसर्ग होकर रूप बना।

श्री शब्द के रूप अजन्त स्त्रीलिङ्ग में दिये गये हैं।

दाम्नी-शस-यु-युज-स्तु-तुद-सि-सिच-मिह-पत-दश-नहः करणे 3.182

दाबादेः ष्ट्रन स्यात्करणेर्थे। दात्यनेन दात्रम्। नेत्रम्।

व्याख्याः दाप् (काटना), नी (ले जाना), शस् (मारना), यु (मिलाना), युज् (जोड़ना) स्तु (स्तुति करना), तुद् (पीड़ा पहुंचाना), सि (बन्धन), सिच् (सींचना), मिह् (सींचना), पत् (गिरना), दश् (डसना) और नह् (बांधना) धातुओं से ष्ट्रन् प्रत्यय हो करण अर्थ में।

ष्ट्रन् के षकार और नकार इत्संज्ञक हैं। षकार के लोप होने पर टकार अपने पूर्वरूप तकार में बदल जाता है। व शेष रहता है।

दात्र (दाति अनेन, दाता, दरात)—दा धातु से प्रकृत सूत्र के द्वारा ष्ट्रन प्रत्यय हुआ। अकारान्त नपुंसकलिङ्ग दात्र प्रातिपदिक बना।

नेत्रम् (नयति अनेन, इससे विषय रूप के प्रति ले जाता है, आंख आदि)—नी धातु से प्रकृत सूत्र द्वारा ष्ट्रन् प्रत्यय होने पर अकारान्त नपुंसकलिङ्ग प्रातिपदिक बनताहै।

ति-तु-त्र-त-थ-सि-सु-सर-क-सेषु च 7.2.9.

एषां दशानां कृत्प्रत्ययानाम् इण् न। शस्त्रम्। योत्रम्। योक्त्रम। स्तोत्रम्। तोत्त्रम्। सेत्रम्।। सेक्त्रम्। मेढ्रम्। पत्त्रम्। दंष्ट्रा। नद्ध्री।

व्याख्याः ति, तु, त्र, त, थ, सि, सू, सर, क, स—इन दस प्रत्ययों को इट् न हो।

ति—क्तिन् और क्तिच्, तु—तुमन् त्र—ष्ट्रन्, त—तन्, य—क्थन्, सि—क्सि, सु सर—सरन्, क—कन्, स—ये प्रत्ययों के असली रूप हैं। इनमें कुछ प्रत्यय उणादि हैं। ये सब वलादि आर्धधातुक हैं। इनको इट् प्राप्त है, उसका इस सूत्र से निषेध हो गया।

प्रकृत में ष्ट्रन् को इट् का निषेध करने को यह सूत्र यहां दिया गया है।

शस्—शस्त्रम्, शस्त्र। यु. युज्—योत्रत्, योक्त्रम्, जीतने को रस्सी, जोत। स्तु—स्तोत्रम्, स्तुति। तुद्—तोत्रम्, चाबुक। सि—सेत्रम् बन्धन रज्जु। सिच्—सेक्त्रम्, सींचने का पात्र। मिह्—मेढ्म्, लिङ्ग। पत्—पत्त्रम् सवारी, पत्ता आदि। दंश्—दंष्ट्रा, दाढ़। नह्—नध्री, चमड़े की रस्सी।

ऊपर दिखाये गये शब्द ष्ट्रन प्रत्यय से बने हैं। ष्ट्रन् प्रत्यय परे रहते ग्रुप भी यथाप्राप्त हुआ। चवर्ग को कवर्ग भी हुआ है मेढ् में ढत्व, धत्व, ष्टुत्व और ढलोप हुए हैं। दंष्ट्रा में षत्व, ष्टुत्व हुए हैं। नध्री में हकार को 'नहो धः'

से धकार हुआ है।

इन शब्दों का लिङ्ग अर्थानुसार है। दंष्ट्रा और न्रधो स्त्रीलिंग हैं। षित् होने से नध्री में ङीप हुआ। षित कार्य, का अनित्य होने से दंष्ट्रा में ङीप् न होकर टाप् हुआ।

अर्ति'-लू-धू-खन-सह-चर इत्रः 3.2.184

अरित्रम्। लवित्रम्। धवित्रम्। सवित्रम्। खनित्रम्। सहित्रम्। चरित्रम्।

व्याख्याः ऋ (जाना), ल (काटना), धू (कांपना), सू (पैदा करना),, खन् (खनना), सह् (सहना), और चर् (चलना या खाना)– इन धातुओं से इत्र प्रत्यय हो।

इत्र प्रत्यय आर्धधातुक होता है। इसके परे रहते जहां प्राप्त है वहां गुण भी होता है। इससे बने प्रातिपदिक प्रायः नपुंसकलिङ्ग में प्रयुक्त होते हैं।

अरित्रम् (नाव चलाने का डंडा, चप्पू)–ऋ धातु के प्रकृत सूत्र के द्वारा इत्र प्रत्यय हुआ। ऋ को गुण होने पर 'अरित्र' अकारान्त प्रातिपदिक बना। प्रथमा के एकवचन में रूप सिद्ध हुआ।

लू–लवित्रम् चाकू आदि। **धू-धवित्रम्,** पंखा। **खन्-खनित्रम्,** खनने का साधन, कुदाल। **सह्-सहित्रम्**, सहन करने का साधन, छाता आदि। **चर्-चरित्रम्,** चरित्र, वत्तान्त, आचरण–इन शब्दों की सिद्धि भी पूर्वोक्त प्रकार से होती है।

पुवः संज्ञायाम् 3.2.185

पवित्रम।

व्याख्याः पू धातु से संज्ञा में इत्र प्रत्यय हो।

पवित्रम्–(पवित्रा, कुश का बना हुआ)–पू धातु से इत्र प्रत्यय हुआ। गुण, अव् आदेश होने पर सिद्ध हुआ।

पूर्वकृदन्त समाप्त।

अथोणादयः

(ल) कृ-वा-पा-जि-मि-स्वदि-साध्यशूभ्य उण्। करोतीति-कारुः। वातीति-वायुः। पायु-'गुदम्। जायुः-औषधम्। मायुः-पित्तम्। स्वादुः। परकार्यमिति साधुः। आशु-शीघ्रम।

व्याख्याः **कृवेति**–कृ, वा, पा, जि, मि, स्वद्, साध् और अश् धातु से उण् प्रत्यय हो।

कारुः (शिल्पी–करोति)–कृ धातु से कर्ता में उण् प्रत्यय होने पर णित् होने से ऋकार को आर् वद्धि होकर 'कारु' यह उकारान्त प्रातिपदिक बना। प्रथमा के एकवचन में रूप सिद्ध हुआ।

वायुः (हवा)–वा धातु से उण् प्रत्यय होने पर 'आतो युक् चिण्कृतोः' से युक् आगम हुआ।

पायुः (गुद)–या धातु से उण् प्रत्य होने पर युक् होकर रूप सद्ध हुआ।

जायुः (जयति अभिभवति रोगान्–जो रोगों को दूर करें अर्थात् औषध)–जि धातु से उण्, णित् होने से वद्धि, आय् आदेश होकर 'जायु' प्रातिपदिक बना।

मायुः (मिनोति प्रक्षिपति देहे ऊष्माणम्–जो शरीर में गरमी डालती है, पित्त)–मि (प्रक्षेपण) धातु से उण्, णित् होने से वद्धि, आय् आदेश होकर 'मायु' प्रातिपदिक बना।

स्वादुः (स्वाद में अच्छा)–स्वद् (आस्वादन) धातु से उण् प्रत्यय 'अत उपधायाः' से उपधादीर्घ होकर 'स्वादु' प्रातिपदिक बना।

साधुः (जो दूसरे के कार्य को सिद्ध करे, सज्जन)–साध् धातु से उण् प्रत्यय होकर 'साधु' प्रातिपदिक बना।

आशु (अश्नुते व्याप्नोति–शीघ्र या शीघ्र होनेवाला)–अश धातु से उण् प्रत्यय होने पर उपधादीर्घ होकर 'आशु'

प्रातिपदिक बना।

शीघ्रता अर्थ में आशु अव्यय है, शीघ्रता युक्त अर्थ में द्रव्यवाची होने से त्रिलिङ्ग होता है।

उणादयो बहुलम् 3.3.1

एते वर्तमाने संज्ञायां च बहुलं स्युः। केचिद् अविहिता अप्यूह्याः। संज्ञासु धातुरूपाणि प्रत्ययाश्च ततः परे। कार्याद् विद्याद् अनूबन्धम् एतच्छास्त्रम् उणादिषु।।

इत्युणादयः।

व्याख्याः उण् आदि प्रत्यय वर्तमानकाल में और संज्ञा में बहुल हों।

केचिदिति—यहां बहुल ग्रहण से कोई अविहित अर्थात् जिनका किसी सूत्र से विधान नहीं किया गया, उनकी भी कल्पना कर लेनी चाहिये

संज्ञास्विति—संज्ञा शब्दों में जिस धातु की संभावना होउसकी कल्पना कर लेनी चाहिये, धातु की कल्पना के अनन्तर शेष भाग प्रतयय का समझकर प्रत्यय—कल्पना करनी चाहिये। प्रत्ययों में अनुबन्धकार्य के अनुसार जोड़ना चाहिये—उणादियों में यही शास्त्र अर्थात् शासन—नियम— है।

कहने का तात्पर्य यह है कि जिस संज्ञा शब्द को बनाना हो उसके पूर्व भाग को धातु का रूप समझना चाहिये, जहां तक बन सके शेष भाग को प्रत्यय मानकर उसके साथकार्य गुणनिषेध आदि के अनुसार अनुबन्ध की कल्पना करनी चाहिये। यही उणादि प्रत्ययों का प्रकार है।

जैसे—'दुषेरुलच्' इस उणादि सूत्र से उलच् प्रत्यय होता है 'शड्कुला' शब्द मे ंपूर्व भाग शङ्क, धातु और उत्तर भाग उलच् प्रत्यय समझकर इसकी व्युत्पत्ति कर लेनी चाहिये। 'ऋफिड' शब्द में ऋ धातु और फिड प्रत्यय हैं, गुण का प्रतिषेध यहां दीख रहा है, इसलिये प्रत्यय के साथ गुण निषेध करने वाला अनुबन्ध क आदि भी जोड़ना चाहिये।

ई़ी प्रकार अन्य संज्ञा शब्दों में उणादिप्रत्ययों की कल्पना के साथ प्रकृति और अनुबन्ध की भी कल्पना कर लेनी चाहिये।

उणादि प्रत्यय पाणिनि की अष्टाध्यायी से बाहर हैं, परनतु 'उणादयो बहुलम्' इस पाणिनि सूत्र के द्वारा पाणिनि को सम्मत हैं।

उणादि समाप्त

अथोत्तरकृदन्तम्।

अब उत्तरकदन्त प्रकरण प्रारम्भ होता है।

पूर्वकृदन्त और उत्तरकृन्दत ये दो प्रकरण कृत् प्रत्ययों के किये गये हैं। पूर्व प्रकरण में बताये गये प्रत्यय प्रायः कारक अर्थों में होते हैं। उत्तर प्रकरण में बताये जानेवाले प्रत्यय प्रायः भाव में होते हैं। उनमें कुछ प्रत्ययों के द्वारा शब्द अव्यय पद बन जाता है।

तुमुन्-ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम् 3.4.10

क्रियार्थायां क्रियायाम् उपपदे भविष्यत्यर्थे धातोरेतौ स्तः। मान्तत्वादव्ययत्वम्। कृष्णं द्रष्टुं याति कृष्णं दर्शको याति।

व्याख्याः क्रियार्थ क्रिया उपपद रहते धातु से भविष्यत् अर्थ में तुमुन् और ण्वुल् प्रत्यय हो।

उपपद से 'समीप रहना' अर्थ लिखा जाता है चाहे वे आगे रहे या पीछे।

जिस क्रिया के लिये दूसरी क्रिया की जाती है उससे ये प्रत्यय होते हैं।

मान्तवत्वादिति—मान्त होने से तुमुन्नन्त पद अव्यय होता है।

अर्थात् तुमुन् का उन् इत्संज्ञक है, तुम् शेष रहता है, मकारान्त होने से 'कृन्मेजन्तः१.१.३६।।' सूत्र से अव्यय संज्ञा होती है। इस कारण 'अव्यय—कृतो भावे— इस वचन से तुमुन् भाव अर्थ में होता है।

परन्तु ण्वुल् प्रत्यय मान्त न होने से अव्यय नहीं और अत एव कर्ता अर्थ में ही होता है।

कृष्णं द्रष्टुं याति (कृष्ण को देखने के लिये जाता है)—यहां 'गमन' क्रिया 'दर्शन' क्रिया के लिये हो रही है। अतः क्रियार्थ 'गमन' क्रिया 'या' धातु के समीप रहते दश् धातु से तुमुन् प्रत्यय हुआ। तब 'सजिदशोर्झल्यमकिति' से ऋकार के आगे अम् आगम हुआ और ऋकार को यण् रेफ, शकार को व्रश्चभ्रस्ज—' से षकार, तकार को ष्टुत्व टकार होकर 'द्रष्टुम्' सिद्ध हुआ।

यहां 'याति' यह क्रियार्थ क्रिया उपपद है। 'कृष्णम्' यह कर्म है। 'न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतनाम्' से षष्टी का निषेध हुआ अतः 'कर्मणि द्वितीया' हुई।

कृष्णकर्मक भविष्त्कालिक दर्शनार्थ गमन—यह इस वाक्य का अर्थ है।

कृष्णं दर्शको याति (कृष्ण को देखनेवाला जाता है)—यहां भी पूर्ववत् 'याति' यह क्रियार्थ क्रिया उपपद है। अतः दश् धातु से ण्वुल् प्रत्यय हुआ। वु को 'युवोरनाकौ ७.१.१।।' से 'अक' आदेश और ऋकार को गुण् अर् होने पर 'दर्शक' प्रातिपदिक बना।

'कृष्णम् यहां कर्म में द्वितीया हुई। 'अकेनोर्भविष्यदाधमर्ण्ययोः २.३.७० ।' से षष्ठी का निषेध हुआ।

काल-समय-वेलासु तुमुन् 3.3.167

व्याख्याः काल, समय और वेला—इन शब्दों के उपपद रहते धातु से तुमुन् प्रत्यय हो।

कालार्थेषूपदेषु तुमुन्। कालः समयो वेला वा भोक्तुम्।

व्याख्याः काल आदि पर्याय हैं— इसका तात्पर्य यह है कि कालार्थक शब्द उपपद रहते धातु से तुमुन् होता है। इसी बाता को 'कालोर्थेषु' इस वत्ति के द्वारा प्रकट किया गया है।

कालः समयो वेला वा भोक्तुम (भोजन का समय है)—यहां काल आदि शब्द उपपद रहते भुज् धातु से तुमुन् प्रत्यय हुआ। तब आर्धधातुक तुमुन् परे रहते लघूपध गुण होने पर जकार को 'चोः कुः' से कवर्ग गकार और उसे चर् ककार होकर रूप सिद्ध हुआ।

भावे 3.3.18

सिद्धावस्थापन्ने धात्वर्थे वाच्ये धातोर्घा्। पाकः।

व्याख्याः सिद्ध अवस्था को प्राप्त धातु का अर्थ भाव अर्थात् व्यापार वाच्य हो तो धातु से घा् प्रत्यय हो।

घा् का केवल् अ शेष रहता है, धकार और ाकार इत्संज्ञक है।

धातु का अर्थ भाव दो प्रकार का होता है—साध्यावस्थापन्न और सिद्धावस्थापन्न। तिङन्त अवस्था में भाव साध्यावस्थापन्न होता है और घा् आदि कृत् प्रत्ययों के द्वारा सिद्धावस्थापन्न भाव की प्रतीति होती है। सिद्धावस्थापन्न होने से यहां भाव द्रव्य के समान प्रकाशित होता है। कहा भी है—**कृदभिहितो भावो द्रव्यवत् प्रकाशते।** द्रव्यवत होने से घन्त आदि से लिङ्ग वचन का योग हो जाता है।

घा्प्रत्ययान्त भाववाचक संज्ञायें पुंल्लिङ्ग होती हैं।

पाकः (पकाना, विक्लित्ति)—पच् धातु से भाव में घा् हुआ, ाित् होने से 'अत उपधायाः' के द्वारा उपधा को वद्धि आकार हुआ। घित् प्रत्यय परे होने से 'चेजोः कुः धिण्यतोः' सूत्र से चकार को ककार होने पर 'पाक' प्रातिपदिक

बना। प्रथमा के एकवचन में उक्त रूप सिद्ध हुआ।

अ'कर्तरि च कारके संज्ञायाम् 3.3.19

कर्तभिन्ने कारके घा् स्यात्

व्याख्याः कर्ता से भिन्न कारक अर्थ में संज्ञा में धातु से घा् प्रत्यय हो।

'भावे' सूत्र से विहित भाव घा् है और इस सूत्र से विहित कारक घा्।

घाि च भाव-करणयोः 6.4.27

रजेर्नलोपः स्यात् रागः। अनयोः किम्-रज्यत्यस्मिन्निति रङ्ग।

व्याख्याः **रागः** (रंगना या रङ्ग जिससे रंगा जाता है)—यहां रज् धातु से भाव में 'भावे' सूत्र से 'रजनं रागः' इस अर्थ में अथवा 'रज्यतेनेन'रंगने का जो साधन हो' इस प्रकार करण अर्थ में 'अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्' से घा् प्रत्यय हुआ। दोनों अर्थों में प्रकृत सूत्र से नकार का लोप हुआ। तब ाित् प्रत्यय परे होने से 'अत उपधायाः' से उपधा अकार को वद्धि आकार होकर रूप बना।

अनयोरिति—भाव और करण में हुए घा् परे रहते रजू के नकार का लोप होता है, ऐसा क्यों कहा? इसका उत्तर है। रज्यत्यस्मिन्निति रङ्गः—अर्थात् जिस में लोग रजित होते हैं। यहां रज् प्रत्यय हुआ है। इसीलिये नकार का लोप नहीं हुआ। रङ्ग नाटक खेलने को जगह अर्थात् रङ्गभूमि को कहते हैं। यहां घा् होने पर जकार को 'चजोः कुः घिण्ण्यतोः' से गकार हुआ और तब नकार को अनुस्वार और परसवर्ण सकार हुआ।)

निवास-चिति-शरीरोपसमाघानेष्वादेश्चकः 3.6.41.

एषु चिनोतेर्घा्, आदेश्च ककारः। उपसमाधानम्—राशीकरणम्। निकायः। कायः। गोमय-निकायः।

व्याख्याः निवास, चिति—यज्ञ में अग्नि का स्थल विशेष शरीर और उपसमाधान अर्थ में चिा् धातु से घा् प्रत्यय हो और आदि वर्ण को ककार।

उपसमाधानमिति—उपसमाधान राशीकरण—ढेर लगाने को कहते हैं।

निकायः (निवास, घर)—यहां नि'पूर्वक चिा् धातु से निवास अर्थ में घा् प्रत्यय हुआ और आदि चकार को ककार। तब ाित् परे होने से इकार को 'अचोणिति' से वद्ध होने पर रूप बना।

निपूर्वक चि धातु के घञन्त रूप का अर्थ ही निवास होता है।

कायः[१] (चीयतेस्थ्यादिकमत्र, इसमें हड्डी आदि एकत्र होती है, अर्थात् शरीर)— यहां शरीर अर्थ में चिा् धातु से घा् प्रत्यय हुआ है।

गोमय-निकायः (गोबर का ढेर)—यहां निपूर्वक चिा् धातु से राशीकरण—ढेर लगाना—अर्थ में घा् प्रत्यय हुआ। सिद्धि पूर्ववत् होती है।

यज्ञ में अग्नि के स्थल विशेष अर्थ का उदाहरण यहां नहीं दिया गया है।

एरच् 3.3.56

इवर्णान्ताद् अच्। अयः। चयः।।

व्याख्याः इवर्णान्त धातु से भाव अर्थ में अच् प्रत्यय हो।

यह घा् का बाधक है। दोनों का अकार ही यद्यपि शेष रहता है, तो भी घा् के ाित् होने से उसके परे रहते वद्धि होती है, अच् के परे रहते नहीं। अच्—प्रत्ययान्त शब्द भी पुंल्लिङ्ग होते हैं।

चयः (चुनना)—इवर्णान्त चि धातु से भाव अर्थ में अच् प्रत्यय हुआ। धातु के इकार को गुण और अय् आदेश होकर

---

१. 'कायो देहः क्लीयपुंसोः' इत्यमरः।

रूप सिद्ध हुआ।

जयः (जीतना)—इवर्णान्त जि धातु से भाव में अच् प्रत्यय होने पर धातु के इकार को गुण और अय् होकर रूप बना।

ऋदोरप् 3.3.57

ऋदन्ताद् उवर्णान्ताद्अप् करः गरः। यवः। लवः। स्तवः। पवः।

(वा) घार्थे क—विधानम्। प्रस्थः। विघ्नः।

व्याख्याः दीर्घ ऋकारान्त और उवर्णान्त धातुओं से अप् प्रत्यय हो भाव में।

अप् प्रत्यय भी घञ् का बाधक है। अप् प्रत्ययान्त शब्द भी पुंल्लिङ्ग होते हैं।

घञ्, अच् और अप् का अकार शेष रहता है, पर अनुबन्ध कृत अन्तर स्वर भेद के लिये है। घञन्त ञित् होने से आद्युदात्त होता है, घान्त ञित् होने से आद्युदात्त और अजन्त चित् होने से अन्तोदात्त और अबन्त पित् होने से अनुदात्त।

करः (बिखरेना, हाथ), **गरः** (निगलना)—कृ और गृ इन दीर्घ ऋकारान्त धातुओं से अप् प्रत्यय होने पर ऋकार को गुण होकर रूप बना।

यु-युवः (मिलाना, जौ)। **लू-लवः** (काटना, लेश, भाग), **स्तु-स्तवः** (स्तुति करना, स्तोत्र)। **पू-पवः** (पवित्र करना)—इनकी सिद्धि भी पूर्ववत् होती है।

(वा) घार्थे इति— 'घञ्' प्रत्यय के अर्थ में 'क' प्रत्यय हो।

क प्रत्यय का ककार इत् है, इसलिये कित् होने से इसके परे रहते गुण आदि का निषेध होता है।

प्रस्थ[१]ः (प्रतिष्ठन्ति धान्यान्यस्मिन् प्रतिष्ठन्ते जना अस्मिन्—परिमाण—विशेष और पर्वत का शिखर)—यहां प्रपूर्वक स्था धातु से अधिकरण अर्थ में क प्रत्यय हआ। कित् परे होने से 'आतो लोप इटि च' से धातु के आकार का लोप होकर अकारान्त प्रातिपदिक बना।

विघ्नः (विघ्नन्ति मनांसि यस्मिन्, विघ्न)—विपूर्वक हन् धातु से अधिकरण में प्रकृत वार्तिक से क प्रत्यय हुआ। 'गमहन—' इत्यादि सूत्र से उपधा अकार का लोप और 'हो हन्तेः—' से हकार को कुत्व घकार होकर अकारान्त प्रातिपदिक बना।

ड्वितः क्त्रिः 3.3.88

व्याख्याः जिस धातु का डु इत् हो, उससे क्त्रि प्रत्यय हो। क्त्रि को ककार इत्संज्ञक है। 'त्रि' शेष रहता है।

क्त्रेर्मम् नित्यम् 4.4.20

क्त्रि-प्रत्ययान्तात् मम् निर्वत्तेर्थे। पाकेन निर्वत्तं पक्त्रिमम्। डुवप्-उप्त्रिमम्।

व्याख्याः क्त्रि प्रत्यान्त से मम् प्रत्यय होता है निर्वत्त—सिद्ध—अर्थ में।

पक्त्रिमम्—पच् धातु का मूल रूप 'डुपचष्' है, इसका यह प्रत्यय तद्धित है। डु इत् है। इसलिये पूर्व सूत्र से क्त्रि प्रत्यय हुआ। धातु के चकार को 'चोः कुः' से कवर्ग ककार हुआ। प्रकृत सूत्र से क्त्रिप्रत्ययान्त 'पवित्र' शब्द से निर्वत्त अर्थ में मप् प्रत्यय होने से 'पक्त्रिम' प्रातिपदिक बना। विशेष्य के अनुसार इसका लिङ्ग होगा। यहां प्रथमा के एकवचन में रूप बना।

'पक्त्रि' का अर्थ है 'पाक' और मप् प्रत्यय का सिद्ध अर्थ में होने से 'पक्त्रिमम्' का अर्थ है 'पाक से सिद्ध'।

---

१. टि. १—'कम्पो देहः क्लीबपुंसोः' इत्ययरः।

उप्त्रिमम्—(बोने से सिद्ध) डुवप् (उगाना) धातु से पूर्व सूत्र से क्त्रि प्रत्यय हुआ। कित् होने से 'वचिस्वपियजादीनां पिति' से संप्रारण होने पर प्रकृत सूत्र से मप् प्रत्यय होकर रूप बना।

ट्वितोथुच् 3.3.89

टुवेप कम्पने। वेपथुः।

व्याख्याः जिस धातु का टु इत् हो उससे अथुच् प्रत्यय हो भाव अर्थ में।

अथुच् का चकार इत्संज्ञक है। अथुच्—प्रत्ययान्त शब्द पुंल्लिङ्ग होते हैं।

वेपथुः (कांपना)—टुवेप् धातु से प्रकृत सूत्र से अथुच् प्रत्यय हुआ। उकारान्त प्रातिपदिक बना। प्रथमा के एकवचन में उक्त रूप सिद्ध हुआ।

इसी प्रकार टुओश्वि—**श्वयथु** (शोभा सूजन)। **टुनदि-नन्दथ'** (आनन्द)। **टुओरफूर्जा-ग्फुर्जथुः** (वज्र का का शब्द)—ये शब्द भी सिद्ध होते हैं।

यज-याच-यत-विच्छ-प्रच्छ-रक्षो नङ् 3.3.90

यज्ञः। याचा। यत्नः। विश्नः। प्रश्नः। रक्ष्णः।

व्याख्याः यज् याच्, विच्छ्, प्रच्छ और रक्ष् धातुओं से नङ् प्रत्यय हो भाव आदि अर्थों में।

नङ् का ङकार इत्संज्ञक है। नङ्प्रत्ययान्त शब्द 'याचाा' को छोड़कर पुंल्लिङ्ग होते हैं।

यज्ञः (हवन)—यज् धातु से प्रकृत सूत्र के द्वारा नङ् प्रत्यय हुआ। नकार को श्चुत्व अकार हाने पर ज् ा मिलकर ज्ञ बने, तब 'यज्ञ' प्रातिपदिक के प्रथमा के एकवचन में रूप बना।

याच्ञा (मांगना)—याच् धातु से नङ् प्रत्यय होने पर श्चुत्व अकार नकार के स्थान में हुआ। स्त्रीत्वविवक्षा में 'अजाद्यतष्टाप् ४.४.४।।' से टाप् प्रत्यय होने पर प्रथमा के एकवचन में उक्त रूप सिद्ध हुआ।

यत्नः (कोशिश)—यत् धातु से नङ् प्रत्यय होने पर रूप सिद्ध हुआ।

विश्नः (प्रताप)—विच्छ् धातु से नङ् होने पर 'च्छवोः शूडनुनासिके' से च्छकार को शकार होकर रूप बना।

प्रश्नः (जिज्ञासा, सगल)—प्रच्छ् धातु से नङ् प्रत्यय और च्छकार को पूर्ववत् शकार होकर रूप बना।

रक्ष्णः—रक्ष् धातु से नङ् प्रत्यय होने पर 'रषाभ्यां नो णः समानपदे' से नकार को णकार होकर रूप सिद्ध हुआ।

स्वपो नन् 3.3.92

स्वप्नः।

व्याख्याः स्वप् धातु से नन् प्रत्यय हो।

नन् का नकार इत्संज्ञक है। नित् का फल स्वरप्रकरण में आद्युदात्त होना बताया जायेगा। नङ् से नन् का ङित् से गुणनिषेध के अतिरिक्त स्वर में भी अन्तर है।

स्वप्नः (सोना, सपना)—स्वप् धातु से नन् प्रत्यय होने पर रूप बना।

उपसर्गे घोः किः 3.3.93

प्र-धिः। उप-धिः।

व्याख्याः उपसर्गपूर्वक घुसंज्ञक धातुओं से कि प्रत्यय हो। कि प्रत्यय का ककार इत् है।

घुसंज्ञा 'दाधाध्वादाप्' से दा रूप और धा—रूप धातुओं की होती है।

कि—प्रत्ययान्त शब्द पुंल्लिङ्ग होते हैं।

प्रधिः (नेमि)—प्र—पूर्वक घुसंज्ञक धा धातु से प्रकृत सूत्र के द्वारा कित् प्रत्यय हुआ। कित् परे होने से 'आतो लोप

इटि च' से आकार का लोप होकर 'प्रधि' यह इकारान्त प्रातिपदिक बना। प्रथमा के एकवचन में उक्त रूप सिद्ध हुआ।

उपधिः (दम्भ)–उप–पूर्वक धा धातु से पूर्ववत् सिद्ध होता है।

इसी प्रकार–उपाधि, व्याधि (शारीरिक रोग), आधि (मानसिक रोग), समाधि (एकाग्रता), जलधि (समुद्र), विधि (ब्रह्मा, भाग्य, प्रकार), सन्धि (मेल), निधि (खजाना), अभिसन्धि (अभिप्राय) इत्यादि शब्द बनते हैं।

इनमें उपाधि, व्याधि विधि और सन्धि आदि कुछ शब्द हिन्दी में स्त्रीलिंङ्ग हैं, उसी संस्कार में संस्कृत में इन्हें स्त्रीलिंङ्ग समझने का भ्रम बहुतों को हो जाता है। वस्तुतः कि–प्रत्ययान्त होने से ये शब्द पुंल्लिङ्ग ही हैं।

स्त्रियां क्तिन् 3.3.94

स्त्रीलिङ्गे भावे क्तिन् स्यात्। घाापवादः। कृतिः। स्तुतिः।

(वा) ऋ-ल्वादिभ्यः क्तिन्निष्ठाववाच्यः। तेन नत्वम्-कीर्णिः। लूनिः। धूनिः। पूनिः।

(वा) संपदादिभ्यःक्विप्। संपत्। विपत्। आपत्। क्तिन्नपीष्यते-संपत्ति। विपत्तिः। आपत्तिः

व्याख्याः स्त्रीलिङ्ग भव में क्तिन् प्रत्यय हो।

क्तिन् के ककार और नकार इत्संज्ञक हैं। ति शेष रहता है। 'स्त्रियाम्' के अधिकार में होने से क्तिन् प्रत्यय से बने शब्द स्त्रीलिंङ्ग होते हैं यह घा् का बाधक है।

कृतिः (कार्य) कृ धातु से क्तिन् प्रत्यय होने पर इकारान्त प्रातिपदिक बना। प्रथमा के एकवचन में रूप बना।

क्तिन्प्रत्ययान्त शब्दों के रूप 'मति' शब्द के समान बनते हैं।

स्तुतिः—स्तु धातु से क्तिन् प्रत्यय होने पर रूप सिद्ध हुआ।

ऋकारान्त और लू आदि धातुओ से पर क्तिन् निष्ठा के समान हो।

निठावद्भाव का प्रयोजन तकार को नकार होता है।

कीर्णिः (बिखेरना)–कृ धातु से क्तिन् प्रत्यय होने पर 'ऋत इद् धातोः' से ऋकार को इर् आदेश 'हलि च' से इकार को दीर्घ, निष्ठावद्भाव होने से 'रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः' से तकार को नकार और उसे णकार होकर रूप बना।

इसी प्रकार—लू-लूनिः (काटना), **धू-धूनिः** (कांपना) और **पू-पूनिः** (विनाश)–इन क्तिन्–प्रत्ययान्त शब्दों की सिद्धि निष्ठावद्भाव के कारण तकार को नकार होने पर होती है।

सम् आदि उपसर्ग पूर्वक पद् धातु से भाव में क्विप् प्रत्यय हो।

संपद्, विपद्, आपद्—यहा सम्, वि और आ–पूर्वक पद् धातु से क्विप् हुआ। उसका सर्वापहार लोप हुआ। दकारान्त प्रातिपदिक सिद्ध हुआ।

क्विप् प्रत्यय से बने हुए ये शब्द स्त्रीलिंङ्ग हैं।

क्तिल्नपीति—क्तिन् प्रत्यय भी इन उपसर्गों के पूर्व रहते पद् धातु से होता है।

संपत्तिः विपत्तिः, आपत्तिः—यहां पूर्वोक्त उपसर्गों के पूर्व रहते पद् धातु से क्विप् प्रत्यय हुआ। धातु के दकार को 'खरि च' से चर् तकार होने पर रूप सिद्ध हुए।

ऊति-यूति-जूति-साति-हेति-कीर्तयश्च 3.3.97

एते निपात्यन्ते।

व्याख्याः ऊति, यूति, जूति, साति, हेति और कीर्ति–ये क्तिन्नन्त निपातित होते हैं।

ऊति-अव् (रक्षा करना) धातु से बना है। उपर्धा वकार को ज्वर–त्वर–' इस अग्रिम सूत्र से ऊट् होकर

रूप बना।

यूति और **जूति** में यु और जु धातु से क्तिन् प्रत्यय होने पर दीर्घ निपातन हुआ है।

साति—षो (अन्तः कर्मणि) धातु को क्तिन् परे रहते 'द्यतिस्यति—७.४.४०' इसे इतव प्राप्त था, उसका अभाव निपातन से हुआ। तब 'आदेच उपदेशेशिति'६.१.४५।। से आकार होकर रूप सिद्ध हुआ।

हेति (शस्त्र)—हन् धातु से क्तिन्, 'अनुदात्तोपदेश—६.४.३७।।' से मकारका लोप हुआ। अकार को एकार निपातन से होता है।

कीर्ति (यश)—कृत् धातु से'८७२ ण्यासश्रन्थ युच् ३.३.१०७।।' से यहां ण्यन्त होने से युच् प्राप्त था। निपातन से क्तिन् हुआ। 'उपधायाश्च ७.७.१०१।।' से इकार रपर, 'हलि च ८.२.७७।।' से दीर्घ होने पर प्रयोग बना।

ज्वर-त्वर-स्त्रिव्यवि मवामुपधायाश्च 6.4.27

एषामुपधा-वकारयोरूठ् अनुनासिके, क्वौ, झलादौ क्ङिति च। अतः क्विप्। गूः। तूः। स्त्रसूः। ऊः। मूः।

व्याख्याः ज्वर्, त्वर, स्रिव्, अव् और मव् धातुओं के उपधा और वकार को ऊट् हो अनुनासिक क्वि और झलादि कित् ङित् प्रत्यय परे रहते।

अव् धातु से क्तिन् प्रत्यय के द्वारा सिद्ध 'ऊति' शब्द ऊपर दिखाया गया है। उसमें वकार को ऊठ् इस सूत्र से हुआ है। अकार का लोप निपातन से हुआ है।

अतः क्विबिति—इसलिये ही इन धातुओं से क्विप् प्रत्यय सिद्ध होता है अर्थात् जब क्विप् परे रहते इन धातुओं से ऊठ् का विधान इस सूत्र से किया गया है तो इनसे क्विप् होना सिद्ध होता है। सम्पद् आदिके आकृतिगण होने से 'सम्पदादिभ्यः क्विप्' इससे क्विप् प्रत्यय ऊपर लिखी धातुओं से हुआ।

जू (रोग)—ज्वर् धातु से पूर्वोक्त प्रकार से क्विप् और प्रकृत सूत्र से उपधा वकार को ऊठ होने पर 'जूर्' प्रातिपदिक बना। इसके रूप—जूः, जूरौ, जूर' इत्यादि बनते हैं।

तूः (शीधकारी)—त्वर् धातु से क्विप् और ऊठ् होने पर पूर्ववत् रूप बनते हैं।

स्त्रूः (चलने वाला)—स्त्रिव् तु से क्विप् और ऊठ् होने पर दीर्घ ऊकारान्त प्रातिपदिक बना। **स्त्रूः,स्त्रुवौ, स्त्रुवः** इत्यादि रूप बनते हैं।

ऊः (रक्षक)—अव् धातु से पूर्ववत् शब्द बनता है। ऊः, उवौ, उवः—इत्यादि रूप बनते हैं।

मूः (बांधनेवाला)—मव् धातु से पूर्ववत्—दीर्घ ऊकारान्त शब्द बनकर **मूः, मुवो, मुवः** इत्यादि रूप बनते हैं।

इच्छा 3.3.101

इषेर्निपातोयम्।

व्याख्याः इष (इच्छा) धातु सेश प्रत्यय का निपातन होता है।

इच्छा—इष् इच्छायाम् धातु से प्रकृत सूत्र के द्वारा श प्रत्यय का निपातन होने पर शकार अनुबन्ध का लोप हुआ। शित् होने से इसकी सार्वधातुक संज्ञा हुई और तब शप् विकरण तथा दोनों अकारों को पर रूप एकादेश हुआ। तब 'इषुगमियमा छः' से षकार को छ और छकार को तुक् आगम तकार को श्चुत्व चकार होने पर स्त्रीत्वंविवक्षा में टाप् प्रत्यय होकर दीर्घ आकारान्त शब्द बना।

अ प्रत्ययात् 3.3.102

प्रत्ययान्तेभ्यो धातुभ्यः स्त्रियामकारः प्रत्ययःस्यात्। चिकीर्षा। पुत्रकाम्या।

व्याख्याः प्रत्ययान्त धातु से स्त्रीलिङ्ग में अकार प्रत्यय हो। सूत्रस्य 'अ' पद लुप्त प्रथमा के विधेय का वाचक है।

चिकीर्षा—सन्नन्त कृ धातु चिकीर्ष से प्रकृत सूत्र से अ प्रत्यय होने पर 'अतो लोपः' से अकार का लोप और स्त्रीत्वविवक्षा में टाप् होकर दीर्घ आकारान्त शब्द बना।

पुत्रकाम्या—काम्यच्–प्रत्ययान्त पुत्रकाम्य धातु से अ प्रत्यय होने पर स्त्रीत्व विवक्षा में टाप् होकर आकारान्त शब्द बना।

गुरोश्च हलः 3.3.103

गुरुमतो हलन्तात् स्त्रियाम् 'अ' प्रत्ययः स्यात्। ईहा।

व्याख्याः गुरुमान् हलन्त धातु से स्त्रीलिङ्ग में अ प्रत्यय हों।

ईहा (चेष्टा)—ईह् धातु ईकार के गुरु होने से गुरुमान् है और हलन्त है ही। अतः इससे अ प्रत्यय हुआ। स्त्रीलिंङ्ग में टाप् होने पर आकारान्त शब्द बना।

ण्यास-श्रन्थो युच् 3.3.107

अकारस्यापवादः। कारणा। हारणा।

व्याख्याः ण्यन्त, आस् और श्रन्थ् धातुओं से युच् प्रत्यय हो।

युच् का चकार इत्संज्ञक है। 'यु' की 'युवोरनकौ ७.१.१।।' से अन् आदेश होता है।

अकारस्येति—यह युच् प्रत्यय पूर्व अ प्रत्यय का बाधक है। ण्यन्त से प्रत्ययान्त होने के कारण 'अ प्रत्ययात् ३.३.१०२' सूत्र के द्वारा और आस् तथा श्रन्थ् से गुरुमान् हलन्त होने के कारण पूर्व सूत्र 'गुरोश्च हलः ३.३.१०३।।' से अ प्रत्यय प्राप्त था।

कारणा[१] – (यातना)—ण्यन्त कृ धातु कारि से प्रकृत सूत्र से युच् प्रत्यय हुआ। 'यु' को 'अन' आदेश और णि का 'णेरनिटि' से लोप होने पर स्त्रीत्व विवक्षा में टाप् प्रत्यय होकर दीर्घ आकारान्त शब्द बना।

हारणा (हटाना)—ण्यन्त हृ धात् परि से पूर्ववत् रूप सिद्ध होता है। **आस-आसना**। **श्रन्थ-श्रन्थना**।

नपुंसके भावे क्तः 3.3.114

व्याख्याः नपुंसक भाव में धातु से क्त प्रत्यय हो।

इसके पूर्व भाव प्रत्यय पुंल्लिङ्ग और स्त्रीलिंङ्ग मे बताये गये हैं अब कुछ प्रत्यय नपुंसकलिङ्ग के बताये जाते हैं।

ल्युट् च 4.3.115

हसितम्। हसनम्।

व्याख्याः ल्युट् प्रत्यय भी नपुंसक भाव में हो।

हसितम्, हसनम् (हंसना)—हस् धातु से नपुंसक भाव में प्रकृत सूत्रों से क्त और ल्युट् प्रत्यय हुए। क्त को वलादि आर्धधातुक होने से इट् हुआ और ल्युट् के यु को अन आदेश होकर रूप सिद्ध हुए।

पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण 3.3.118

छादेर्घेद्व्युपसर्गस्य

व्याख्याः पुंल्लिंग संज्ञा में प्रायः घ प्रत्यय हो।

द्वि-प्रभत्युपसर्ग-हीनस्य छादेर्हस्वो घे परे। दन्ताश्छाद्यन्तेनेनेति दन्तच्छदः। आकुर्वन्त्यस्मिन्निति-आकरः।

व्याख्याः एकसे अधिक उपसर्ग रहित छकारादि धातु को ह्रस्व हो घ प्रत्यय परे रहते।

दन्तच्छन्दः (ओठ, दांत ढके जाते हैं जिससे)—ण्यन्त छादि से दन्त उपपद रहते पूर्व सूत्र से छ प्रत्यय हुआ और

१. 'कारणा तु था तत्र तीव्रवेदन्ना' इत्यमरः।

प्रकृतसूत्र से आकार को ह्रस्व। 'णेरनिटि' से णि का लोप होने पर रूप सिद्ध हुआ।

आकरः (खान, आ कुर्वन्ति अस्मिन्—जिसमें मिलकर लोग काम करते हैं)—आ पूर्वक कृ धातु से अधिकरण अर्थ में पूर्व सूत्र से घ प्रत्यय होने पर ऋकार को गुण होकर अकारान्त शब्द बना।

ये दोनों शब्द पुंल्लिङ्ग है, क्योंकि घ प्रत्यय का विधान पुंल्लिङ्ग मे ही किया गया है।

अवे तृ-स्त्रोर्घा् 3.3.120

अवतारः कूपादेः। अवस्तारो जवनिका।

व्याख्याः अब उपसर्ग पूर्वक तृ और स्तृ धातुओं से घा प्रत्यय हो।

त और स्त धातुओं से ऋकारान्त होने के कारण 'ऋदोरप् ३.३.५७।।' सूत्र से अप् प्रत्यय प्राप्त था। उसको बाधकर यह सूत्र संज्ञा में अब उपसर्ग पूर्व रहते घा् प्रत्यय करता है।

अवतारः (घाट, अवतरन्ति अत्र—जिसमें उतरते हैं)—अव—पूर्वक त धातु से प्रकृत सूत्र से घा् प्रत्यय हुआ। ऋकार को वद्धि होकर अकारान्त शब्द बना।

अवस्तारः (जवनिका—पर्दा)—अव—पूर्वक स्त धातु से पूर्ववत् घा् होने पर शब्द सिद्ध होता है।

हलश्च 3.3.121

हलन्ताद् घा्। घापवादः। रमन्ते योगिनोस्मिन्नति-रामः। अपमज्यतेनेन व्याध्यादिरिति-अपामार्गः।

व्याख्याः हलन्त धातु से घा् प्रत्यय हो।

घापवादेति—यह सूत्र घ का बाधक है। 'पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण' सूत्र से प्राप्त घ को बाधकर यह होता है।

रामः (परब्रह्म, जिसमें योगी रम जाते हैं)—रम् धातु से हलन्त होने के कारण अधिकरण में घा् प्रत्यय होने पर 'अत उपधायाः' से वद्धि होकर शब्द बना।

अपामार्गः (ओषधि—विशेष, सज्जी इति भाषा, जिससे शुद्धि होती है)—अप—पूर्वक मज धातु से हलन्त होने के कारण प्रकृत सूत्र के द्वारा घा् प्रत्यय करण में हुआ। 'चजोः कुः घिण्ण्यतोः' से जकार को कवर्ग गकार होता है। वद्धि होने पर 'उपसर्गस्य घयमनुष्ये बहुलम् ६.३.१२२।।' सूत्र से उपसर्ग अप के अन्त्य अकार को दीर्घ होने पर शब्द सिद्ध हुआ।

ईषद् दुस्सुषु कृच्छाकृच्छ्रार्थेषु खल् 3.3.126

करणाधिकरणयोरिति निवत्तम्। एषु दुःखसुखार्थेषूपपदेषु खल्। 'तयोरेव' इति भावे कर्मणि च कृच्छ-दुष्करः कटो भवता। अकृच्छेईषत्करः। सुकरः।

व्याख्याः ईषद् (अल्प), दुस् (कठिनता से) और सु (सरलता से)—इन दुःख सुखार्थ शब्दों के उपपद रहते धातुओं से खल् प्रत्यय हो।

खल् के खकार और लकार इत्संज्ञक है। कवेल अकार बचता है। व्याख्यान ऐसा ही क्यों किया गया है।

करणेति—'करणाधिकरणयोः' इसकी निवत्ति हो गई है।

तयोरेव इति—यह खल् प्रत्यय 'तयोरेव कृत्य—क्त—खलर्थाः ३.४.७०।।' इस सू से भाव और कर्म में होता है।

दुष्करः कटो भवता (आपके द्वारा चटाई बनाना मुश्किल है)—यहां दुस्पूर्वक कृ धातु से कृच्छ कार्य अर्थ को प्रकट करने के लिये प्रकृत सूत्र से कर्म में खल् प्रत्यय हुआ। ऋकार को गुण होकर रूप सिद्ध हुआ।

करना क्रिया का कर्म कट है। प्रत्यय में कर्म के उक्त हो जाने के कारण कर्म कट से प्रथमा विभक्ति हुई।

'भवता' यह ततीयान्त कर्ता है। क्रिया कर्मवाच्य की होने से कर्ता अनुक्त हुआ, अतः उससे ततीया हुई।

'कर्तकर्मणोः २.३.६५।' से कर्ता से प्राप्त षष्ठी का 'न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतनाम् २.३.६५।।' से निषेध हो जाता है।

ईषत्करः, सुकरः (सुख से किया जानेवाला अर्थात् सरल)—ईषद् और सु पूर्व रहते कृ धातु से सरल अर्थ बताने के लिये प्रकृत सूत्र से खल् प्रत्यय होकर रूप सिद्ध हुआ।

आतो युच् 4.3.128

खलोपवादः। ईषत्पानः सोमो भवता। दुष्पानः। सुपानः।

व्याख्याः आकारान्त धातु से पूर्वोक्त दशा में युच् प्रत्यय हो।

युच् का चकार इत्संज्ञक है। 'यु' को 'अन' आदेश होता है।

खल इति—खल का यह युच् बाधक है।

ईषत्पानः सोमो भवता (आपके लिये सोम पीना सरल है)—यहां अकृच्छार्थ ईषत् उपपद रहते आकारान्त पा धातु से खल् को बाधकर युच् प्रत्यय हुआ।

दुष्पानः। सोमो भवता (दुःख से पिया जानेवाला), **सुपानः** (सरलता से पिय जानेवाला)—इन शब्दों की सिद्धि भी पूर्वोक्त प्रकार से ही होती है।

कर्म में प्रत्यय होने से उक्त हो जाने के कारण उससे प्रथमा होती है। भवता—यह ततीयान्त कर्ता है। कर्मवाच्य के कारण अनुक्त होने से कर्ता से ततीया हुई। 'कर्तकर्मणोः कृति, २.३.६५।' से प्राप्त कर्तरि षष्ठी को 'न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतनाम् २.३.६६' से निषेधहुआ।

अलं-खल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा 3.4.18

प्रतिषेधार्थयोरल-खल्वोरुपपदयोः क्त्वा स्यात्। प्राचां ग्रहणं पूजार्थम्। 'अमैवाव्ययेन' इतिनियमात् नोपपदसमासः 'दोदद्धौः' अलं दत्त्वा। 'घु-मा-स्था-' इतीत्वम्-पीत्वा खलु। अलं-खल्वोः किम्-मा कार्षीत्। प्रतिषेधयोः किम'अलङ्कारः।

व्याख्याः प्रतिषेधार्थक अलं और खलु शब्द उपपद रहते धातु से क्त्वा प्रत्यय हो प्राचीन आचार्यों के मत से।

क्त्वा प्रत्यय का ककार इत्संज्ञक है। कित् होने से गुण वद्धि का निषेध, संप्रसारण आदि कार्य होते हैं। सेट् धातुओं से पर कत्वा को वलादि आर्धधातुक होने से इट् आगम भी होता है।

प्राचामिति—'प्राचाम्' का ग्रहण आदर के लिये किया गया है। उनके मत का उल्लेख करना आदर को ही सूचित करता है।

अमैवेति—'अव्यय के साथ यदि उपपद का समास हो तो अम् के साथ ही हो' इस नियम के कारण यहां उपपद समास नहीं होता। क्योंकि क्त्वा अव्यय है, पर अम् से भिन्न है।

अलं दत्त्वा (मत दो)—यहां प्रतिषेधार्थक अलम् उपपद् के पूर्व रहते दा धातु से क्त्वा प्रत्यय हुआ। 'दो दद् धोः' से दा को दद् आदेश होने पर चर् होकर रूप सिद्ध हुआ।

क्त्वाप्रत्ययान्त शब्द 'क्त्वा—तोसुन्'कसुनः' सूत्र से अव्यय होते हैं।

पीत्वा खलु (मत पियो)—यहां निषेधार्थक खलु शब्द उपपद रहते क्त्वा प्रत्यय हुआ। क्त्वा के कित् होने से 'घुमास्थागापाजहातिसां हलि' से अकार का ईकार होकर रूप सिद्ध हुआ।

अलं खल्वोरिति—प्रतिषेधार्थक अलं और खलु के पूर्व रहते क्यों कहा? इसका प्रयोजन है 'मा कार्षीत्' (मत करो) यहां न होना। क्योंकि यहां 'अलं' का 'खलु' नहीं, प्रतिषेधात्मक 'मा' पद है।

प्रतिषेधयोरिति—प्रतिषेधार्थक होने चाहिये—ऐसा क्यों कहा? इसका फल है **अलंकारः** (यहां क्त्वा नहीं हुआ)। यहां अलं पद तो है, पर निषेधार्थक नहीं, यहां भूषणार्थक है।

समान-कर्तकयोः पूर्वकाले 3.4.21

समान-कर्तकयोर्धात्वर्थयोः पूर्वकाले विद्यमानाद्धातोः क्त्वा स्यात्। मुक्त्वा व्रजति। द्वित्वम् अतन्त्रम-भुक्त्वा पीत्वा व्रजति।

व्याख्याः समानकर्तक धात्वर्थों में पूर्वकाल में वर्तमान धातु से क्त्वा प्रत्यय हो अर्थात् जब एक साथ दो क्रियायें हो रही हों और उन का कर्ता एक हो तब जो क्रिया पहले हो उसे क्त्वा प्रत्यय हो।

पूर्वकाल में होने से इस, क्त्वा से बने क्रिया पद को पूर्वकालिक क्रिया कहते हैं। इसके लिये हिन्दी में धातु के साथ 'कर' पद जोड़ा जाता है जैसे–खाकर जाऊंगा। सोकर उठते ही काम में लग गया।

मुक्त्वा व्रजति (खाकर जाता है)–यहां भोजन और गमन क्रियाओं, का कर्ता एक है तथा भोजन क्रिया पूर्वकाल–पहले हो रही है इसलिये भोजन–क्रियार्थक भुज् धातु से क्त्वा प्रत्यय हुआ। धातु के जकार को कवर्ग गकार और उसे चर् ककार होकर रूप सिद्ध हुआ।

द्वित्वमिति–सूत्र में द्विवचन विवक्षित नहीं अर्थात् दो क्रियाएं ही होने पर पूर्व क्रिया से क्त्वा होता है–ऐसी बात नहीं अपितु दो से अधिक अनेक क्रियाएं भी बेशक हों, उनमें पूर्वकाल की क्रियाएं चाहे कितनी हों उन सब से क्त्वा प्रत्यय होगा।

मुक्त्वा पीत्वा व्रजति–(खा पी कर जाता है)–यहां खाना, पीना और जाना–ये तीन क्रियायें हैं। इनमें खाना और पीना क्रियाएं जाना क्रिया से पहले हो रही है। इसलिये खाना क्रिया की वाचक भुज् और पीना क्रिया की वाचक पा धातु से क्त्वा प्रत्यय हुआ।

न क्त्वा सेट्. 1.2.18

सेट् क्त्वा कित् न स्यात्। शयित्वा। सेट् किम्-कृत्वा।

व्याख्याः सेट् क्त्वा कित् न हो।

शयित्वा (सोकर)–शी धातु से पूर्व सूत्र से क्त्वा प्रत्यय हुआ। वलादिलक्षण इट् होने पर क्त्वा के सेट् हो जाने के कारण प्रकृत सूत्र से कित् का निषेध हुआ। फिर 'क्ङिति च' से निषेध न होने के कारण धातु के ईकार को गुण और उसे 'अय्' आदेश होकर रूप सिद्ध हुआ।

सेड् इति–सेट् क्त्वा कित् नहीं होता, ऐसा क्यों कहा। इसका फल है–**कृत्वा**–में निषेध नहीं हुआ, क्योंकि यहां **कृ** धातु के अनुदात्तोपदेश होने से इट् नहीं हुआ, इसलिये क्त्वा अनिट् है।

रलो व्युपघाद् हलादेः संश्च 1.2.26

इवर्णोवर्णोपधाद् हलादे रलन्तात् परौ क्त्वा-सनौ सेटौ वा कितौ स्तः। द्युतित्वा। द्योतित्वा। लिखित्वा, लेखित्वा। व्युप्धात् किम्-वर्तित्वा। रलः किम्-सेवित्वा। हलादेः किम्-एषित्वा। सेट् किम्-भुक्त्वा।

व्याख्याः इवर्ण और उवर्ण जिनकी उपधा हो ऐसे हलादि और रलन्त धातुओं से पर सेट् क्त्वा तथा सन् प्रत्यय कित् होते हैं विकल्प से।

कित्पक्ष में गुण आदि का निषेध और संप्रसारण होता है। और अभाव में गुण आदि हो जाते हैं तथा संप्रारण नहीं होता।

द्युतित्वा द्योतित्वा (चमक कर)–द्युत धातु के क्तवा प्रत्यय होने पर प्रकृत सूत्र से वैकल्पिक कित् हुआ क्योंकि यह धातु हलादि है, रल् तकार अन्त में होने से रलन्त है और इसकी उपधा में उकार है तथा क्त्वा सेट् भी है। कित्पक्ष में गुण का निषेध हो गया और अभावपक्ष में गुण।

इसी प्रकार–लिखित्वा, लेखित्वा (लिखकर) इनकी भी सिद्धि हाती है।

व्युपधादिति–उपधा इवर्ण या उवर्ण हो–ऐसा क्यों कहा? इसका फल है–वर्तित्वा–में कित् न होना, यहां वत् धातु है इसकी उपधा ऋकार है। इसलिए गुण होकर एक ही रूप बना।

रल इति—रलन्त हो ऐसा क्यों कहा? इलिये कि **'संवित्वा'** में सूत्र न लगे। यहां सेव् धातु है, इसके अन्त में वकार है यह रल् प्रत्याहार में नहीं आता।

हलादेरिति—हलादि धातु हो, ऐसा क्यों कहा? इसलिये कि एषित्वा में सूत्र न लगे। यहां इष् वात है, अजादि है, हलादि नहीं। इसलिये कि न होने के कारण गुण हो गया।

सेट् इति—क्त्वा सेट् हो, ऐसा क्यों कहा? इसलिये कि अनिट् क्त्वा ये सूत्र न लगे। जैसे—भुक्त्वा यहां क्त्वा अनिट् है। इसलिये कित् विकल्प न होने से एक ही रूप बना।

उदितो वा 7.2.56

उदितः परस्य क्त्व इड् वा। शमित्वा, शान्त्वा। देवित्वा, द्यत्वा दधातेहिः-हित्वा।

व्याख्याः उदित् धातुओं से पर क्तवा को इट् विकल्प से हो **शमित्वा, शान्त्वा** (शान्त होकर)—शमु (उपशमे, शान्त होना, दि. पर. से.) इरा उदित् धातु से क्त्वा प्रत्यय होने पर प्रकृत सूत्र से उसे इड् विकल्प से हुआ। इट्पक्ष में प्रथम रूप बना। अभावपक्ष में 'अनुनासिकस्यक्विझलोः—६.४.१५' इस सूत्र से उपधा अकार को दीर्घ हुआ। मकार को 'नश्चापदान्त्स्य झलि ८.३.२४।।' से अनुस्वार और उसे परसवर्ण नकार होकर दूसरा रूप सिद्ध हुआ।

देवित्वा, द्यूत्वा (खेलकर आदि)—उदित् दिव् घात से क्तवा प्रत्यय होने पर उसे प्रकृत सूत्र से इट् विकल्प हुआ। इट्पक्ष में लघुपध गुण होकर पहला रूप सिद्ध हुआ। अभाव पक्ष में च्छ वीः शूडननुनासिक ६.४.१६।।' से वकार को ऊठ् होने पर इकार को यण् होकर दूसरा रूप सिद्ध हुआ।

हित्वा (धारण कर)—धा धातु से क्त्वा प्रत्यय होने पर 'दधतेर्हिः ७.४.४२।।' से धा को 'हि आदेश होकर रूप सिद्ध हुआ।

जहातेश्च क्त्वि 7.4.43

हित्वा। हाङस्तु-हात्वा।

व्याख्याः ओहाक् त्यागे धातु को भी 'हि' आदेश होता है क्त्वा प्रत्यय परे होते ।

हित्वा (छोड़कर)—ओहाक् धातु से क्त्वा प्रत्यय होने पर प्रकृत सूत्र से 'हा' को 'हि' आदेश होकर रूप बना।

हाङस्तु इति—ओहाङ् गतौ धातु का क्त्वा का रूप हात्वा (जाकर) बनेगा। यहां पूर्व सूत्र से 'हि' आदेश नहीं होता।

समासेनाॖपूर्वे क्त्वो ल्यप् 7.1.37

अव्यय-पूर्वपदेना् समासे क्त्वो 'ल्यप' आदेशः स्यात्। तुक्-प्रकृत्य अना् किम्-अकृत्वा।

व्याख्याः अवव्यय पूर्वपद समास में—पर ना् समास न हो—धातु से पर क्त्वा को ल्यप् आदेश हो।

ल्यप् के लकार और पकार इत्संज्ञक हैं और य शेष रहता है।

प्रकृत्य (करके)—क्त्वा प्रत्ययान्त कृत्वा का प्र उपसर्ग रूप अव्यय के साथ 'कुगति प्रादयः' २.२.१८।। से समान होने पर प्रकृत सूत्र से क्त्वा के स्थान में ल्यप् आदेश हुआ। ल्यप् के पित् होने से उसके परे रहते 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' से तुक् आगम होकर रूप सिद्ध हुआ।

अना् इति— ना् समास न हो, ऐसा क्यों कहा? इसलिये कि ना्समास में क्त्वा को ल्यप् आदेश न हो जाय। उसे—**अकृत्वा** (न करके बगैर किये)—यहां ना् समास से क्त्वा को ल्यप् आदेश नहीं हुआ।

आभीक्ष्ण्ये णमुल् च 3.4.22

आभीक्ष्ण्ये द्योत्ये पूर्वविषये णमुल् स्यात् क्त्वा च।

व्याख्याः जहां आभीक्षण्य—निरन्तरता—बतानी हो वहां क्त्वा के विषय में णमुल् प्रत्यय भी होता है और क्त्वा भी।

णमुल् का अम् भाग शेष रहता है, बाकी भाग इत्संज्ञक होने से लोप को प्राप्त हो जाता है। णमुलन्त शब्द — 'कृन्मेजन्तः १.१.३६।।' से अव्यय होता है।

नित्य-वीप्सयोः 8.3.4

आभीक्ष्ण्ये वीप्सायां च द्योत्ये पदस्य द्वित्वं स्यात्। आभीक्ष्ण्यं तिङन्तेष्वव्ययसंज्ञकेषु कृदन्तेषु। स्मारं स्मारं नमति शिवम्। स्मत्वा स्म त्वा। पायं पायम्। भोजं भोजम्। श्रावं श्रावम्।

व्याख्याः अर्थात् क्त्विता निरन्तरता और वीप्सा अर्थात् वार वार होना—ये बातें जब क्रिया को बतानी हों तो पद को द्वित्व हो।

आभीक्ष्ण्यमिति—निरन्तरता अर्थात् लगातार होना तिङन्तों का अव्ययसंक्षक कृदन्तों की क्रिया का बताया जाता है।

स्मारं स्मारं नमति शिवम् (याद करके शिवजी को प्रणाम करता है)—यहां स्मरण क्रिया का लगातार होना बताने के लिए स्म धातु से णमुल् प्रत्यय हुआ। णित् होने से णमुल् परे रहते 'अची णिति ७.२.११५।।' से ऋकार को आर् वद्धि हुई। 'स्मारम्' बन जाने पर इसको प्रकृत सूत्र से द्वित्व हुआ।

स्मत्वा स्मत्वा— णमुल् के अभावपक्ष में क्त्वान्त को प्रकृत सूत्र से द्वित्व हुआ।

पायं पायम् (पी पी कर या रक्षा करके)—पा धातु से क्रिया की निरन्तरता को बताने के लिये पूर्व सूत्र से णमुल् प्रत्यय हुआ। 'आतो युक् चिण्कृतोः ७.३.३३।।' से युक् आगम होने पर 'पायम्' शब्द बना। इसका 'नित्यवीप्सयोः' से द्वित्व हुआ।

भोजं भोजम् (निरन्तर खाकर)—यहां भुज् (रु. प. अ.) धातु से क्रिया का लगातार होना बताने के लिये णमुल् प्रत्यय हुआ। फिर लघूपध गुण होने पर 'भोजम्' शब्द बना। इसको प्रकृत सूत्र से द्वित्व हुआ।

श्रावं श्रावम् (सुन सुनकर)—यहां सुनना क्रिया का लगातार होना बताने के लिये श्रु धातु (भ्वा. पर. अ.) से पूर्व सूत्र से णमुल् प्रत्यय हुआ। णित् परे होने से धातु के उकार को 'अचो णिति ७.२.११५' से वद्धि औकार उसे आव् आदेश होने पर 'श्रावम्' शब्द बना। उसको प्रकृत सूत्र से द्वित्व हो गया।

पक्ष में इन सब स्थलों में क्त्वा प्रत्यय भी होता है।

अन्यथैवं-कथम्-इत्थंसु सिद्धाप्रयोगश्चेत् 3.4.27

एषु कृणो णमुल् स्यात् सिद्धोप्रयोगोस्य एव भूतश्चेत् कृा, व्यर्थ-त्वात्प्रयोगानर्ह इत्यर्थः।

अन्यथाकारम, एवंकारम्, इत्थंकारं भुङ्क्ते। सिद्धेति किम्-शिरोन्यथाकृत्वा।

इत्युत्तरकृन्दतम्।

इति कृदन्तप्रकरणम्।

व्याख्याः अन्यथा, एवम्, कथम् और इत्थम्—इन अव्ययों के पूर्व रहते कृा् धातु से णमुल् प्रत्यय हो यदि कृा् का उपयोग सिद्ध हो अर्थात् कृा् के प्रयोग की आवश्यकता न हो, बिना उसके प्रयोग के इष्ट अर्थ की प्रतीति हो जाय।

व्यर्थत्वादिति—व्यर्थ होने के कारण कृा् का प्रयोग उचित न हो—यह अर्थ है 'सिद्धाप्रयाग इस सूत्रस्थ पद का।

अन्यथाकारम्, एवंकारम् इत्थंकार भुङ्क्ते (और प्रकार से, इस प्रकार से खाता है)—यहां अन्यथा, एवम् और इत्थम्—पूर्वक कृ धातु से प्रकृत सूत्र के द्वारा णमुल् प्रत्यय हुआ। फिर 'अचो णिति' से वद्धि होकर रूप बना। यहां कृ का प्रयोग व्यर्थ है क्योंकि इष्ट अर्थ अन्यथा आदि उपपदों से प्रतीत हो जाता है। अर्थात् 'अन्यथा, एवम्, इत्थम्, भुङक्ते, इस प्रकार कहने पर भी अभीष्ट अर्थ की प्रतीति हो जाती है। इसलिये कृा् के सिद्धाप्रयोग होने से णमुल् प्रत्यय हुआ।

सिद्धेति—सिद्धाप्रयोग अर्थात् कृ का प्रयोग व्यर्थ हो—ऐसा क्यों कहा? इसलिये कि **शिरोन्यथा कृत्वा भुङ्क्ते**— शिर को अन्यथा करके खाता है—यहां णमुल् नहीं हो, क्योंकि यहां कृ का प्रयोग व्यर्थ नहीं है, किन्तु आवश्यक है, नहीं तो 'अन्यथा' का प्रयोग व्यर्थ हो जायगा और 'शिरः' इस कर्म का अन्वय असम्भव हो जायेगा।

उत्तरकृदन्त समाप्त।

कृदन्त प्रकरण समाप्त।